श्रीराधासुधानिधि

सुधानिधि के सम्बन्ध में उद्गार

ग्रन्थकार द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ में श्रीयुगल के अलौकिक उज्ज्वलतम मधुर रस का सर्वाङ्गीण गान है जो मात्र कृपागम्य है ।

यह रस समुझनि कौ कहु नाहिंन आन उपाय ।

प्रेम दरीची जो कबहूँ सहज कृपा खुलि जाय ॥ (ध्रुवदासजी कृत प्रेमावली)

जैसे-जैसे साधक सांसारिक विषय भोगों के दलदल से निकलेगा, वैसे-वैसे 'विशुद्ध प्रेम की खिड़की' कृपाबल से खुल जायेगी । इसके लिए परमावश्यक है रसिकजनों की वाणी का आश्रय, जो हमें प्रस्तुत लघु टीका के रूप में प्राप्त हुई है ।

ब्रज के परम निस्पृह रसिक संत अनन्त श्रीयुत **श्रीश्रीरमेशबाबाजी महाराज** के द्वारा साधकों के प्रति अपार करुणा के फलस्वरूप श्रीमद्राधासुधानिधिजी का सरल, सुगम, संक्षिप्त व सारगर्भित अनुवाद हुआ । यद्यपि टीकायें अनेक सुलभ हैं तथापि साधकों द्वारा सरल टीका की लगातार माँग होती रही । आपकी इस अद्भुत देन से 'सम्पूर्ण युगलरस उपासक जगत' परम अनुग्रहीत हुआ है । २५ वर्ष पूर्व आपके श्रीमुख से लगातार ७ वर्षों तक श्रीमद्राधासुधानिधि के ४० श्लोकों पर जो प्रवचन हुआ, वह अपूर्व ही है, जिसका संग्रह करके निकट भविष्य में विस्तृत टीका के प्रकाशन का कार्य चल रहा है, जो रसोपासकों के लिए निधि स्वरूप होगा ।

प्रस्तुत टीका के संशोधन का महान कार्य आपकी ही आज्ञा से 'गाजीपुर संस्कृत महाविद्यालय' के प्राचार्य आदरणीय श्रीगोपालजी जिज्ञासु ने अत्यन्त मनोयोग व श्रमपूर्वक किया है; हम आपके प्रति आभार व्यक्त करते हैं । विश्वास है, माधुर्य-रसोपासकों के लिए प्रस्तुत टीका बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी ।

चिरऋणी

राधाकान्त शास्त्री

मानमन्दिर

सुधानिधि विषयक भावाभिव्यक्ति

जगत् की उत्पत्ति आदि का निमित्त कारण वेदान्त वेद्य सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म है, जिसे श्रुति "रसो वै सः" कहती है । अरणि में अन्तर्हित 'अग्नि' मन्थनादि के द्वारा जब तक अपने साकार रूप में प्रकट नहीं हो जाता, तब तक वह अपनी प्रकाशकता एवं दाहकता को प्रमाणित नहीं कर सकता है । ठीक उसी प्रकार सर्वव्यापक निराकार ब्रह्म का स्वरूप भी सगुण-साकार के बिना असमोर्ध्व ऐश्वर्य-माधुर्य आदि की अभिव्यक्ति कथमपि नहीं कर सकता । जैसे गन्ने का रस मिश्री के रूप में आकर और अधिक मधुर बन जाता है, वैसे ही निराकार ब्रह्म 'साकार' होकर निरतिशय माधुर्यादि गुण-गण विशिष्ट होता है । "रसो वै सः" का अर्थ साकार परमेश्वर में ही चरितार्थ होता है, निर्विशेष अद्वय ब्रह्म में नहीं । रस-निष्पत्ति में आलम्बनविभावादि अपेक्षित होते हैं, जैसा की नाट्यशास्त्र प्रणेता भरतमुनि कहते हैं - **"विभावानुभाव सञ्चारि संयोगाद् रस निष्पत्तिः"** सूत्र में उपात्त 'निष्पत्ति' शब्द का अर्थ है – अभिव्यक्ति; रस-निष्पत्ति हेतु एक ही ब्रह्मज्योति 'श्रीराधामाधव' के रूप में द्विधा अवतरित हुई - **"तस्माज्ज्योतिरभूद् द्वेधा राधामाधव रूपकम्" ।** उक्त भरत-सूत्र मे 'संयोग' पद ध्यान देने योग्य है; संयोग दो या दो से अधिक में ही सम्भव है, एक में नहीं । श्रीराधा के आलम्बन-विभाव 'श्रीकृष्ण' हैं और श्रीकृष्ण का आलम्बन-विभाव अशेष माधुर्य की अधिष्ठात्री भगवती 'श्रीकिशोरीजी' हैं । वेद-वाक्य भी यही निर्देश करते हैं – **"श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे ....."** (यजुर्वेद)

अर्थात् परमात्मा की दो पत्नियाँ हैं – श्री एवं लक्ष्मी; 'श्री' सौन्दर्य-माधुर्य-सौकुमार्य आदि की एवं 'लक्ष्मीजी' सकल ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री हैं । वेदोक्त 'श्री' ही वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा हैं तथा 'लक्ष्मी' स्वरूपा रुक्मिणी आदि हैं । 'श्रीकृष्ण' से परे कोई तत्त्व नहीं है – **मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।** (श्रीमद्भगवद्गीता ७/७)

रसिक वैष्णवाचार्य 'कं' एकत्व का ही प्रतिपादन करते हैं, अतएव उपर्युक्त 'मत्तः' पद युगल तत्त्व का वाचक सिद्ध होता है ।

महावाणी का भी यही हार्द है – **कृष्ण रूप श्रीराधिका, राधे रूप श्रीश्याम । दर्शन के ये दोय हैं, एक ही सुख धाम ॥** (महावाणी)

अतएव श्रीराधा-कृष्ण का परस्पर उपास्य-उपासक भाव उनके आत्मारामत्व का ही प्रतिपादक है । ब्रह्मसंहिता में 'श्रीराधा' नाम का निर्वचन इसी आशय से किया है, यथा – **अनयाराध्यते कृष्णो भगवान् हरिरीश्वरः । लीलया रस वाहिन्या तेन राधा प्रकीर्त्तिता ॥**

सुधानिधिकार भी यही स्वीकार करते हैं, यथा –

"या वाराधयति प्रियं व्रजमणिं प्रौढानुरागोत्सवैः" (श्रीराधासुधानिधि - ९७)

सर्वेश्वरी श्रीराधिका प्रगाढ़ परिपक्व अनुरागोत्सव विधि से ब्रजमणि प्रिय 'श्यामसुन्दर' की आराधना करती हैं । श्रीकृष्ण भी अहर्निश प्राणप्रिया 'किशोरी' के जप में तल्लीन रहते हैं, यथा – **कालिन्दीतटकुञ्जरमन्दिरगतो योगीन्द्रवद् यत्पद -**

ज्योतिर्ध्यानपरः सदा जपति यां प्रेमाश्रुपूर्णो हरिः । (श्रीराधासुधानिधि – ९५)

अर्थात् श्रीयमुना तटवर्ती कुञ्जमन्दिर में विराजमान योगीन्द्रवत् 'माधव' सर्वदा श्रीराधानाम का जप करते हुए राधाचरण-ज्योति में ध्यानमग्न हो जाते हैं और उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होते हैं ।

यद्यपि सुधानिधिकार की सेव्य श्रीकिशोरी हैं तथापि वे श्रीकृष्ण का वन्दन-स्मरण करना नहीं भूलते हैं, यथा – **राधाचरणविलोडितरुचिरशिखण्डं हरिं वन्दे ॥**

(श्रीराधासुधानिधि – २००)

जिनका मनोहर मयूरपिच्छ युक्त मुकुट श्रीराधाजी के चरणों में लोट-पोट होता है, उन श्रीकृष्ण की वन्दना करता हूँ ।

अपि च – **सदा गायं गायं मधुरतरराधाप्रिययशः**

सदा सान्द्रानन्दा नवरसदराधापतिकथाः । (श्रीराधासुधानिधि – २५३)

अर्थात् मधुरातिमधुर श्रीराधाजी के प्रिय यश एवं घनीभूत आनन्दरूपा तथा नित्य नवीन रस प्रदान करने वाली श्रीपति माधव की कथाओं का सदैव पुनः पुनः गान करके ....।

काव्यालोचक मनीषियों ने 'ध्वनि' को काव्य की आत्मा माना है – **"काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नात पूर्वः .... "** (ध्वन्यालोक)

"रसध्वनेरध्वनि ये चरन्ति संकान्त वक्रोक्ति रहस्य मुद्राः ।
तेऽस्मत्प्रबन्धा नव धारयन्तु कुर्वन्तु शेषाः शुक वाक्य पाठम्" ॥

'रसध्वनि' ही काव्य का जीवनाधायक आत्मतत्त्व होता है, इसके अभाव में उत्तम काव्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती है; इस दृष्टि से सुधानिधि अति महत्त्वपूर्ण स्थान पर आसीन है, रसभाव से परिपूर्णतम यह अथाह सुधा का सागर निश्चय ही रसिक मुमुक्षुजनों का महान उपकारक है । यद्यपि आर्यावर्त में निःश्रेयस के साधक वेद-वेदाङ्ग, उपनिषद्, ब्राह्मणग्रन्थ, दर्शनशास्त्र आदि सद्ग्रन्थ विद्यमान हैं तथापि वे
सुधानिधि एवं तत्सदृश सरस कृति के समान मानवमात्र के उपकारक नहीं हैं क्योंकि वेदादि शास्त्र दुरूह हैं, अतः सर्वजन बोध-वेद्य नहीं हो सकते; शास्त्रों के नीरस होने से उनमें जनसाधारण की प्रवृत्ति भी नहीं होती, जबकि सुधानिधि अपनी अनुपम सरसता के कारण अनभिमुख मानव को भी भगवदभिमुख करने में सर्वथा सक्षम है । कटु औषध से शमित होने वाला रोग यदि मधुर शर्करा से नष्ट हो जाए तो किस रोगी को शर्करा अभीष्ट नहीं होगी ? चित्तवृत्ति का निरोध ही योग है । दर्शनशास्त्र के अनुसार 'अष्टाङ्ग योग की साधना' जनसामान्य की क्षमता का विषय नहीं है । रसिक वैष्णवाचार्यों की सरस उपासना चित्तवृत्ति के निरोध में सक्षम होने के साथ ही अति सुलभ भी है; जबकि अव्यक्त निर्विशेष ब्रह्म की उपासना के विषय में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं –

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ (श्रीमद्भगवद्गीता १२/५)

अर्थात् अव्यक्त तत्त्व कष्ट-साध्य है; इस दृष्टि से सुधानिधि की उपादेयता स्वतः सिद्ध होती है ।

ब्रज-वसुन्धरा के लिए सर्वथा समर्पित पूज्य श्रीरमेशबाबामहाराज के निर्देशानुसार 'श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान, बरसाना' के द्वारा अद्वितीय कृति श्रीराधासुधानिधि का प्रकाशन हो रहा है, यह परम हर्ष एवं सौभाग्य का विषय है । इस पुनीत कार्य में इन पंक्तियों का लेखक क्षुद्र बौद्धिक सहयोग देकर स्वयं कृतार्थता की अनुभूति कर रहा है । प्रकाशन में सहयोग प्रदान करने वाले सत्पुरुष निश्चय ही श्रीराधामाधव की अहैतुकी अनुकम्पा के सर्वथा पात्र हैं, ऐसा मेरा विश्वास है । रसमयी आराधना के साधक रसिक वैष्णवजनों की मनस्तोषकारिणी इस कृति के प्रकाशन से अध्यात्म जगत् निश्चय ही लाभान्वित होगा ।

"श्रीचरणों में निवेदन"

रमणीयतरं पदकञ्जमहो, वृषभानुसुते तव भीतिहरम् ।

भृशमस्मि भवानल पीडितकः, परिपाहि सुरेश्वरि मामनिशम् ॥१॥

हे वृषभानुनन्दिनी श्रीराधे ! परम कमनीय आपके चरणारविन्द निश्चय ही भवताप विनाशक हैं, मैं संसारानल से अत्यन्त पीड़ित हूँ ।

हे सुरेश्वरी ! आप सदैव मेरी रक्षा करें ।

महतीह दया तव चेतसिया, नवनीत सुकोमलके सुतराम् ।

न हि पश्यसि पात्रमपात्रजनम्, मनसीति निधाय भजे चरणम् ॥२॥

हे श्रीराधे ! नवनीत के समान कोमल आपके हृदय में जो महती (अहैतुकी) कृपा विद्यमान है, वह पात्र-अपात्र का विचार नहीं करती, मन में यही निश्चय कर आपके चरणों का भजन करता हूँ ।

स्त्रिग्विणी राधिका मे गतिः सर्वदा, सर्वलोकैकवन्द्या मुनीन्द्रैर्नुता ।

पादकञ्जे तदीये मतिः मामकी, सन्निविष्टा भवेद् याचतेऽयं जनः ॥३॥

सर्वलोक-लोकान्तरों की एकमात्र वन्दनीया, मुनीन्द्रों की स्तुत्य 'सुन्दर माला से विभूषित श्रीकिशोरी ही एकमात्र मेरी गति हैं, उनके चरणकमलों में मेरी मति सन्निविष्ट हो जाए, यह दास यही कामना करता है ।

यस्याः कदापि पदयोः नखचन्द्रिकायाः, दिव्यं निशम्य पवनेन महः सुधांशुः ।
लज्जाहृतद्युति रहो जलदे विलीनः, कन्दर्प-दर्प-दलनं नतिरस्तु तस्यै ॥४॥

जिन सर्वेश्वरी श्रीराधिकाजू की पद-नख-चन्द्रिका के दिव्य तेज 'जो कि कामदेव के सौन्दर्यजन्य अभिमान को नष्ट करने वाला है' को पवन के द्वारा सुनकर रूपाभिमानी चन्द्रमा मेघ में छिप गया, उन किशोरीजी को प्रणाम स्वीकार हो ।

नैकांशुमालि महसा मवधीरणं यत्, नन्दात्मजाऽसितमहो महसा मिलित्वा ।
अप्रावृषि प्रजनयत्यसुरारि चापम्, यस्याः सितेन शरणं मम सास्तु राधा ॥५॥

श्रीनन्दनन्दन श्यामसुन्दर का श्याम तेज अनन्त सूर्यों के तेज को तिरस्कृत करने वाला है, वह जिन श्रीप्रियाजू के गौर तेज से मिलकर बिना वर्षा ऋतु के भी इन्द्रधनुष को उत्पन्न कर रहा है, वह श्रीराधा मेरी शरण हों ।

हे श्रीराधे तव चरणयोर्नन्दसूनुर्निपत्य,
दन्तैर्धृत्वा तृणमथ मुहुः याचते त्वामभीक्ष्णम् ।
यस्मिन् काले नयन सलिलैः क्लिन्न गात्रो नतास्यः,
कुञ्ज च्छिद्र प्रहितनयनाऽऽलोकने स्यां समर्था ॥६॥

हे श्रीराधे ! जब श्रीकृष्णाचन्द्र दाँतों में तिनका दबाकर आपके चरणों में गिरकर, अश्रु प्रवाह से भींगे हुए शरीर से नत-मस्तक होकर बार-बार आपसे कृपा-याचना करें, तब मैं कुञ्जभवन के छिद्रों में दृष्टि डालकर (युगल छवि) को देखने में समर्थ हो सकूँ (ऐसी कृपा कीजिए) ।

यः श्रीकृष्णो वसुसुर सुतो देवकी नन्दनाख्याः,
शान्ताकारो मुनिजन मनः कञ्जवासः सुरार्च्यः ।

नूनं तस्य प्रकृति मधुरे मानसे राजते या,

सा मे राधा वृषरविसुता मानसे राजतां वै ॥७॥

श्रीदेवकीनन्दन वासुदेव कृष्ण शान्ताकार हैं, मुनिजनों के हृदयकमल पर निवास करने वाले हैं तथा देवताओं के भी अर्चनीय हैं, निश्चित ही उनके स्वभावसुन्दरमानस में जो वृषभानुनन्दिनी 'श्रीराधा' विराजमान हैं, वह सर्वेश्वरी मेरे हृदय में निश्चय ही विराजें, (यही कामना है) ।

११ फरवरी २०२१, श्रीकृष्णकुञ्ज, मानमन्दिर, बरसाना

विनयावनत –

जिज्ञासूपाह्व गोपालः,

पूर्व प्राचार्यः

रस की परावधि ‘समरति’

रसराज श्रृंगार किंवा मधुरा रति ही ब्रह्म की रसस्वरूपता को आस्वादनीय बनाती है । आस्वादन में जो हेतु है वह विभाव नाम से जाना गया है, जिसके दो भेद हैं – आलम्बन और उद्दीपन; पुनः आलम्बन के दो भेद हैं – विषयालम्बन और आश्रयालम्बन; रसास्वादन के लिए दोनों ही अपेक्षित हैं । **“रस्यते आस्वाद्यते इति रसः”** जो आस्वाद्य है, वह रस है । **“रसयति आस्वादयति इति रसः”** जो आस्वादक है, वह रस है । इस प्रकार विषयालम्बन (आस्वाद्य), आश्रयालम्बन (आस्वादक) दोनों की रसरूपता सिद्ध होती है और ये रस ही यहाँ नित्य क्रीडायमान है ।

श्रीहित ध्रुवदासजी के शब्दों में – **“नायक तहाँ न नायिका, रस करवावै केलि”** नायक-नायिका में मुख्य-गौण भाव नहीं है, मुख्यता मात्र रस की है और इस रस की दोनों (नायिका, नायक) में ही स्थिति है । आस्वादन की दृष्टि से कहीं नायक ‘विषयालम्बन’ है तो कहीं नायिका, कहीं नायक ‘आश्रयालम्बन’ है तो कहीं नायिका अथवा ये कहें कि दोनों ही विषयालम्बन हैं व दोनों ही आश्रयालम्बन हैं, तभी तो एक रुचि है, एक अवस्था है, एक ही प्रकार की परस्पर प्रीति है; दोनों का शील एक-सा है और एक-सा ही मृदुल स्वभाव है, रस-विलास के लिए दो देह धारण किए हैं –

“एक रंग रुचि एक वय एकै भाँति स्नेह । एकै शील सुभाव मृदु, रस के हित दो देह” ॥

(श्रीध्रुवदासजी कृत रति-मञ्जरी)

अथवा

ढूँढ़ि फिरै त्रैलोक में बसत कहुँ ध्रुव नाहिं । प्रेम रूप दोऊ एक रस बसत निकुँजनि माहिं ॥

(श्रीध्रुवदासजी कृत प्रेमावली)

दोनों की एकरस स्थिति अर्थात् एक भाव, एक रुचि व एक ही स्वाद है –

प्रेम रासि दोउ रसिकवर, एक वयस रस एक ।निमिष न छूटत अंग-अंग, यहै दुँहुनि कै टेक ॥ अद्भुत रुचि सखि प्रेम की, सहज परस्पर होइ ।जैसे एकहि रंग सौं, भरिये सीसी

दोइ ॥श्याम रंग श्यामा रंगी, श्यामा के रंग श्याम ।एक प्रान तन मन सहज, कहिबै कौ द्वै नाम ॥कबहुँ लाड़िली होत पिय, लाल प्रिय ह्वै जात । नहिं जानत यह प्रेम रस, निसि दिन कहाँ बिहात ॥ (श्रीध्रुवदासजी कृत रंग-विहार)

श्रीप्रिया-प्रियतम दोनों प्रेम की राशि हैं, दोनों ही रसिक हैं, दोनों की एक ही अवस्था है; दोनों में रस की स्थिति भी एक है, दोनों ही गाढ़ आलिङ्गन से कभी मुक्त होना ही नहीं चाहते, दोनों में परस्पर प्रेम की अद्भुत रुचि भी सहज है; इन्हें देखकर तो ऐसा प्रतीत होता है कि एक ही रंग दो शीशियों में भर दिया गया है । श्याम के रंग से श्यामा रँगी हैं व श्यामा के रंग में श्याम रँग रहे हैं; सच तो यह है कि दोनों के तन, मन और प्राण सहज रूप से एक हैं, कहने भर को इनके दो नाम हैं । देखो तो सही कभी 'प्रिया' प्रियतम हो जाती हैं तो कभी 'प्रियतम' प्रिया हो जाते हैं; यह ऐसा प्रेम-रस है कि इसमें निमग्न युगल को यह तक भान नहीं है कि रात-दिन कब व्यतीत हो रहे हैं; ऐसी स्थिति में किसी एक को 'विषय' व अन्य को 'आश्रय' कहना सिद्धान्त के विरुद्ध है; दोनों को 'विषय' व दोनों को 'आश्रय' कहना ही शास्त्र-सम्मत है ।

श्रीहिताचार्य महाप्रभु श्रीयुगल में समान रस की स्थिति मानते हुए कहते हैं – **"दम्पति रस समतूल"** ।

चतुरासीजी का प्रथम पद है – **"जोई जोई प्यारो करै सोई मोहि भावै, भावै मोहि जोई सोई-सोई करैं प्यारे"** जो प्रियतम करते हैं वही मुझे अच्छा लगता है और जो मुझे अभीष्ट है, वही प्रियतम करते हैं ।

श्रीहिताचार्यजी की वाणी में –

जोई जोई प्यारो करै सोई मोहि भावै, भावै मोहि जोई सोई-सोई करैं प्यारे । मोकों तौ भावती ठौर प्यारे के नैनन में, प्यारौ भयौ चाहै मेरे नैंनन के तारे ॥मेरे-तन प्रान हुँतें प्रीतम प्रिय, अपने कोटिक प्रान प्रीतम मोसों हारे ।'जैश्री हित हरिवंश' हंस-हंसिनी साँवल गौर, कहौ कौन करै जल-तरंगन न्यारे ॥

प्रस्तुत पद में श्रीप्रिया-प्रियतम दोनों में ही विषय व आश्रय की अद्भुत स्थिति है ।

श्रीमहावाणीकार की वाणी में –

॥ दोहा ॥

एक भाव रुचि एकहीं एक चाव इकरङ्ग । नहिं बिछुरत प्रियतम दोउ विहरत मिलि इकसंग ॥

॥ पद ॥

नहिं बिछुरत पल प्रियतम दोऊ विहरत संग सँगे रसरंगे । एकहिं भाव चाव रुचि एकहिं एकहिं रङ्ग रँगे रसरंगे ॥ एकहिं वेष प्रान मन एकहिं एकहिं अंङ्ग अँगे रसरंगे । श्रीहरिप्रिया हिलिमिले परस्पर ढरि ढरि ढंग ढँगे रसरंगे ॥ (सुरत-सुख ६०)

'दोनों' दोनों के विषय हैं, 'दोनों' दोनों के आश्रय हैं ।

तृन तोरति गावति गुननि, प्रभा निरखि जो ऊज । कहत प्रान के प्रान ए, रंगभीने दोऊज ॥ दोउ रसिक दोउ सरस सुख, दोउ रूप के धाम । दोउ दोउन के अँग अँग, भीने हो रंग स्याम ॥

॥ दोहा ॥

तृन तोरति गावति गुननि, प्रभा निरखि जोऊज । कहत प्रान के प्रान ए, रंगभीने दोऊज ॥ दोउ रसिक दोउ सरस सुख, दोउ रूप के धाम । दोउ दोउन के अङ्ग अङ्ग, भीने हो रङ्ग स्याम ॥

॥ सोहिलौ ॥

रंगभीने हो अंग अंग स्याम, दोउ रसिक दोउ रूपधाम । दोउ सरस दोउ सुख सहेलि, दोउ प्रेम-आनन्द-बेलि ॥ दोउ दोउन के उरनि-हार, दोउ दोउन के चमत्कार । दोउ दोउन के लड़े लाड़, दोउ दोउन के चितैं चाड़ ॥ दोउ दोउन के रति मनोज, दोउ दोउन के चित के चोज । दोउ दोउन के जीवन जीय, दोउ दोउन के प्यारी पीय ॥ दाउ दोउन के कमलनैन, दोउ दोउन के चैंन ऐंन । दोउ दोउन की बनी बाल, दोउ दोउन के ललित

लाल ॥ दोउ दोउन के कवन अंग, दोउ दोउन के सहज संग । दोउ श्रीहरिप्रिया एक प्रान, दोउ दोउन के सहज त्रान ॥ (उत्साह-सुख १७३)

स्वामी श्रीहरिदासजी की वाणी में –

सम किसोर जोरी नई, नित प्रगट भई सुख सार ।

जनम करम जिनके नहीं, सहज विहार अहार ॥

"सम किसोर जोरी नई" दोनों किशोरों में रुचि की, वय की, प्रीति की समानता है ।

अंग-अंग की उजराई, सुघराई, चतुराई सुन्दरता ऐसै । श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी सम बैसे ॥

अथवा अनुवर्ती आचार्य कहते हैं –

परस्पर दोउ चकोर दोउ चंदा । दोउ चातक दोउ स्वाति दोऊ घन दोउ दामिनी अमंदा ॥ दोउ अरबिंद दोऊ अलि लंपट दोउ लोहा दोउ चुंबक । दोउ आसक महबूब दोऊ मिलि जुरे जुराफा अंबक ॥ दोऊ मुदार दोउ मोर दोऊ मृग दोऊ राग रस भीने । दोउ मनि बिसद दोउ बर पन्नग दोऊ वारि दोउ मीने ॥ भगवत रसिक बिहारनि प्यारी रसिक बिहारी प्यारे । दोउ मुख देखि जियत अधरामृत पियत होत नहिं न्यारे ॥

(श्रीभगवतरसिकदेवजी)

रसमार्गी उपासक के लिए दोनों में समान रति की स्थापना ही करने योग्य है और इस सिद्धान्त को उपरोक्त प्रमाणों के अनुसार सभी रसमार्गों ने स्वीकार किया है ।

ऐसै ही देखत रहौं जनम सुफल करि मानों । प्यारे की भाँवती, भाँवती के प्यारे जुगल किसोरहि जानौ ॥ (केलिमाल)

तथापि श्रीप्रियाजी में विषय व प्रियतम में आश्रय की स्थिति (एकाङ्गी प्रेम) आस्वाद दृष्टि से है । यथा – श्रीहित परम्परा में **"राधा चरण प्रधान हृदै अति सुदृढ उपासी"** 'श्रीराधा' विषयालम्बन हैं । गौड़ीय परम्परा में 'श्रीकृष्ण' विषयालम्बन हैं –

"असमोर्ध्व सौन्दर्य लीलावैदग्ध्य सम्पदाम् । आश्रयत्वेन मधुरे हरिरालम्बनो मतः" ॥

तत्त्वतः दोनों ही 'विषयालम्बन' हैं व दोनों ही 'आश्रयालम्बन' हैं और यही युगल हमारे सेव्य हैं । श्रीनिम्बार्काचार्य भगवान् 'वेदान्त दश श्लोकी' में कहते हैं –

अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा, विराजमानामनुरूपसौभगाम् ।

सखी सहस्रैः परिसेवितां सदा, स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम् ॥

भगवान् श्रीकृष्ण के वामाङ्ग में वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिका प्रसन्न मुद्रा में विराजमान हैं, जो भगवान् श्रीकृष्ण के ही अनुरूप मनोरम हैं, जो हजारों सखियों के द्वारा सदैव सेवित हैं; ऐसी सकल अभीष्ट कामनाओं को प्रदान करने वाली देवी 'श्रीकिशोरीजू' का हम स्मरण करते हैं ।

श्रीआदिवाणीकार कहते हैं –

सेव्य हमारे श्री प्रिय प्यारी वृन्दाविपिन विलासी ।

नन्दनन्दन वृषभानुनन्दिनी चरण अनन्य उपासी ॥

वस्तु तस्तु श्रीयुगल-उपासना (दोनों में समान रति) ही सभी रस-सम्प्रदायों का प्रमुख सिद्धान्त है, अन्य समस्त आस्वादन भेद है ।

डा.रामजीलाल शास्त्री

मानमन्दिर

श्री रमेश बाबा जी महाराज

गुण-गरिमागार, करुणा-पारावार, युगललब्ध-साकार इन विभूति विशेष गुरुप्रवर पूज्य बाबाश्री के विलक्षण विभा-वैभव के वर्णन का आद्यन्त कहाँ से हो यह विचार कर मन्द मति की गति विथकित हो जाती है ।

विधि हरि हर कवि कोविद बानी ।
कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मो सन कहि जात न कैसे ।
साक बनिक मनि गुन गन जैसे ॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड -३क)

पुनरपि

जो सुख होत गोपालहि गाये ।
सो सुख होत न जप तप कीन्हे, कोटिक तीरथ न्हाये ।

(सूर-विनयपत्रिका)

अथवा

रस सागर गोविन्द नाम है रसना जो तू गाये ।
तो जड़ जीव जनम की तेरी बिगड़ी हू बन जाये ॥
जनम-जनम की जाये मलिनता उज्ज्वलता आ जाये ॥

(बाबाश्री द्वारा रचित 'बरसाना' से संग्रहीत)

कथनाशय इस पवित्र चरित्र के लेखन से निज कर व गिरा पवित्र करने का स्वसुख व जनहित का ही प्रयास है ।

अध्येतागण अवगत हों इस बात से कि यह 'लेख' मात्र सांकेतिक परिचय ही दे पाएगा अशेष श्रद्धास्पद (बाबाश्री) के विषय में। सर्वगुणसमन्वित इन दिव्य-विभूति का प्रकर्ष-आर्ष जीवन-चरित्र कहीं लेखन-कथन का विषय है?

"करनी करुणासिन्धु की मुख कहत न आवै"

(सूर-विनयपत्रिका)

मलिन अन्तस् में सिद्ध सन्तों के वास्तविक वृत्त को यथार्थ रूप से समझने की क्षमता ही कहाँ, फिर लेखन की बात तो अतीव दूर है तथापि इन लोक-लोकान्तरोत्तर विभूति के चरितामृत की श्रवणाभिलाषा ने असंख्यों के मन को निकेतन कर लिया, अतएव सार्वभौम महत् वृत्त को शब्दबद्ध करने की धृष्टता की।

तीर्थराज प्रयाग को जिन्होंने जन्मभूमि बनने का सौभाग्य-दान दिया। माता-पिता के एकमात्र पुत्र होने से उनके विशेष वात्सल्यभाजन रहे। ईश्वरीय-योजना ही मूल हेतु रही आपके अवतरण में। दीर्घकाल तक अवतरित दिव्य दम्पति स्वनामधन्य श्री बलदेव प्रसाद शुक्ल ('शुक्ल भगवान्' जिन्हें लोग कहते थे) एवं श्रीमती हेमेश्वरी देवी को सन्तान-सुख अप्राप्य रहा, सन्तान-प्राप्ति की इच्छा से कोलकाता के समीप तारकेश्वर में जाकर आर्त पुकार की, परिणामतः सन् १९३० पौष मास की सप्तमी को रात्रि ९:२७ बजे कन्यारत्न श्री तारकेश्वरी (दीदी जी) का अवतरण हुआ, अनन्तर दम्पत्ति को पुत्र-कामना ने व्यथित किया। पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से कठिन यात्रा कर रामेश्वर पहुँचे, वहाँ जलान्न त्याग कर शिवाराधन में तल्लीन हो गये, पुत्र कामेष्टि महायज्ञ किया। आशुतोष हैं रामेश्वर प्रभु, उस तीव्राराधन से प्रसन्न हो तृतीय रात्रि को माता जी को सर्वजगन्निवासावास होने का वर दिया।

शिवाराधन से सन् १९३८ पौष मास कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि को अभिजित मुहूर्त मध्याह्न १२ बजे अद्भुत बालक का ललाट देखते ही पिता (विश्व के प्रख्यात व प्रकाण्ड ज्योतिषाचार्य) ने कह दिया –

"यह बालक गृहस्थ ग्रहण न कर नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहेगा, इसका प्रादुर्भाव जीव-जगत के निस्तार निमित्त ही हुआ है।"

वही हुआ, गुरु-शिष्य परिपाटी का निर्वाहन करते हुए शिक्षाध्ययन को तो गये किन्तु बहु अल्पकाल में अध्ययन समापन भी हो गया।

"अल्पकाल विद्या बहु पायी"

गुरुजनों को गुरु बनने का श्रेय ही देना था अपने अध्ययन से। सर्वक्षेत्र-कुशल इस प्रतिभा ने अपने गायन-वादन आदि ललित कलाओं से विस्मयान्वित कर दिया बड़े-बड़े संगीत-मार्तण्डों को। प्रयागराज को भी स्वल्पकाल ही यह सानिध्य सुलभ हो सका "तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि" ऐसे अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न असामान्य पुरुष का। अवतरणोद्देश्य की पूर्ति हेतु दो बार भागे जन्मभूमि छोड़कर ब्रजदेश की ओर किन्तु माँ की पकड़ अधिक मजबूत होने से सफल न हो सके। अब यह तृतीय प्रयास था, इन्द्रियातीत स्तर पर एक ऐसी प्रक्रिया सक्रिय हुई कि तृणतोड़नवत् एक झटके में सर्वत्याग कर पुनः गति अविराम हो गई ब्रज की ओर।

चित्रकूट के निर्जन अरण्यों में प्राण-परवाह का परित्याग कर परिभ्रमण किया; सूर्यवंशमणि प्रभु श्रीराम का यह वनवास-स्थल 'पूज्यपाद' का भी वनवास-स्थान रहा। "स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे" इस भावना से निर्भीक घूमे उन हिंसक जीवों के आतंक संभावित भयानक वनों में।

आराध्य के दर्शन को तृषान्वित नयन, उपास्य को पाने के लिए लालसान्वित हृदय अब बार-बार 'पाद-पद्मों' को श्रीधाम बरसाने के लिए ढकेलने लगा, बस पहुँच गए बरसाना । मार्ग में अन्तस् को झकझोर देने वाली अनेकानेक विलक्षण स्थितियों का सामना किया । मार्ग का असाधारण घटना संघटित वृत्त यद्यपि अत्यधिक रोचक, प्रेरक व पुष्कल है तथापि इस दिव्य जीवन की चर्चा स्वतन्त्र रूप से भिन्न ग्रन्थ के निर्माण में ही सम्भव है, अतः यहाँ तो संक्षिप्त चर्चा ही है । बरसाने में आकर तन-मन-नयन आध्यात्मिक मार्गदर्शक के अन्वेषण में तत्पर हो गए । श्रीजी ने सहयोग किया एवं निरन्तर राधारससुधा सिन्धु में अवस्थित, राधा के परिधान में सुरक्षित, गौरवर्णा की शुभ्रोज्ज्वल कान्ति से आलोकित-अलङ्कृत युगल सौख्य में आलोडित, नाना पुराणनिगमागम के ज्ञाता, महावाणी जैसे निगूढात्मक ग्रन्थ के प्राकट्यकर्ता "अनन्त श्री सम्पन्न श्री श्री प्रियाशरण जी महाराज" से शिष्यत्व स्वीकार किया ।

ब्रज में भामिनी का जन्म स्थान 'बरसाना', बरसाने में भामिनी की निज कर निर्मित 'गह्वर-वाटिका' "बीस कोस वृन्दाविपिन पुर वृषभानु उदार, तामें गहवर वाटिका जामें नित्य विहार" और उस गह्वरवन में भी महासदाशया मानिनी का मनभावन मान-स्थान 'श्रीमानमन्दिर' ही मानद (बाबाश्री) को मनोनुकूल लगा । 'मानगढ़' ब्रह्माचलपर्वत की चार शिखरों में से एक महान शिखर है । उस समय तो यह 'बीहड़ स्थान' दिन में भी अपनी विकरालता के कारण किसी को मन्दिर-प्राङ्गण में न आने देता । मन्दिर का आन्तरिक मूल-स्थान चोरों को चोरी का माल छिपाने के लिए था । चौराग्रगण्य की उपासना में इन विभूति को भला चोरों से क्या भय?

भय को भगाकर भावना की – "तस्कराणां पतये नमः" – चोरों के सरदार को प्रणाम है, पाप-पङ्क के चोर को भी एवं रकम-बैंक के चोर को भी । 'ब्रजवासी चोर भी पूज्य हैं हमारे' इस भावना से भावित हो द्रोहार्हणों (द्रोह के योग्य) को भी कभी द्रोह-दृष्टि से न देखा, अद्वेष्टा के जीवन्त स्वरूप जो ठहरे । फिर तो शनैः-शनैः विभूति की विद्यमत्ता ने स्थल को जाग्रत कर दिया, अध्यात्म की दिव्य सुवास से परिव्याप्त कर दिया ।

जग-हित-निरत इस दिव्य जीवन ने असंख्यों को आत्मोन्नति के पथ पर आरूढ़ कर दिया एवं कर रहे हैं । श्रीमच्चैतन्यदेव के पश्चात् कलिमलदलनार्थ नामामृत की नदियाँ बहाने वाली एकमात्र विभूति के सतत् प्रयास से आज ३२ हजार से अधिक गाँवों में प्रभातफेरी के माध्यम से नाम निनादित हो रहा है । ब्रज के कृष्णलीला सम्बन्धित दिव्य वन, सरोवर, पर्वतों को सुरक्षित करने के साथ-साथ सहस्त्रों वृक्ष लगाकर सुसज्जित भी किया । अधिक पुरानी बात नहीं है, आपको स्मरण करा दें - सन् २००९ में "श्रीराधारानी ब्रजयात्रा" के दौरान ब्रजयात्रियों को साथ लेकर स्वयं ही बैठ गये आमरण अनशन पर इस संकल्प के साथ कि जब तक ब्रज-पर्वतों पर हो रहे खनन द्वारा आघात को सरकार रोक नहीं देगी, मुख में जल भी नहीं जायेगा । समस्त ब्रजयात्री भी निष्ठापूर्वक अनशन लिए हुए हरिनाम-संकीर्तन करने लगे और उस समय जो उद्दाम गति से नृत्य-गान हुआ; नाम के प्रति इस अटूट आस्था का ही परिणाम था कि १२ घंटे बाद ही विजयपत्र आ गया । दिव्य विभूति के अपूर्व तेज से साम्राज्य-सत्ता भी नत हो गयी । गौवंश के रक्षार्थ गत ६ वर्ष पूर्व माताजी गौशाला का बीजारोपण किया था, देखते ही देखते आज उस वट बीज ने विशाल तरु का रूप ले लिया, जिसके आतपत्र (छाया) में आज ५०,००० से

अधिक गायों का मातृवत् पालन हो रहा है । संग्रह-परिग्रह से सर्वथा परे रहने वाले इन महापुरुष की 'भगवन्नाम' ही एकमात्र सरस सम्पत्ति है ।

परम विरक्त होते हुए भी बड़े-बड़े कार्य सम्पादित किये इन ब्रज-संस्कृति के एकमात्र संरक्षक, प्रवर्द्धक व उद्धारक ने । गत सप्तषष्टि (६७) वर्षों से ब्रज में क्षेत्रसन्यास (ब्रज के बाहर न जाने का प्रण) लिया एवं इस सुदृढ़ भावना से विराज रहे हैं । ब्रज, ब्रजेश व ब्रजवासी ही आपका सर्वस्व हैं । असंख्य जन आपके सान्निध्य-सौभाग्य से सुरभित हुये, आपके विषय में जिनके विशेष अनुभव हैं, विलक्षण अनुभूतियाँ हैं, विविध विचार हैं, विपुल भाव-साम्राज्य है, विशद अनुशीलन हैं; इस लोकोत्तर व्यक्तित्व ने विमुग्ध कर दिया है विवेकियों का हृदय । वस्तुतः कृष्णकृपालब्ध पुमान् को ही गम्य हो सकता है यह व्यक्तित्व । रसोदधि के जिस अतल-तल में आपका सहज प्रवेश है, यह अतिशयोक्ति नहीं कि रस-ज्ञाताओं का हृदय भी उस तल से अस्पृष्ट ही रह गया ।

'आपकी आन्तरिक स्थिति क्या है' यह बाहर की सहजता, सरलता को देखते हुए सर्वथा अगम्य है । आपका अन्तरंग लीलानन्द, सुगुप्त भावोत्थान, युगल-मिलन का सौख्य इन गहन भाव-दशाओं का अनुमान आपके सृजित साहित्य के पठन से ही सम्भवहै । आपकी अनुपम कृतियाँ – श्री रसिया रसेश्वरी, स्वर वंशी के शब्द नूपुर के, ब्रजभावमालिका, भक्तद्वय चरित्र इत्यादि हृदयद्रावी भावों से भावित विलक्षण रचनाएँ हैं ।

आपका त्रैकालिक सत्संग अनवरत चलता ही रहता है । साधक-साधु-सिद्ध सबके लिए सम्बल हैं आपके त्रैकालिक रसार्द्रवचन । दैन्य की सुरभि से सुवासित अद्भुत असमोर्ध्व रस का प्रोज्ज्वल पुञ्ज है यह दिव्य रहनी, जो

अनेकानेक पावन आध्यात्मास्वाद के लोभी मधुपों का आकर्षण केन्द्र बन गयी, सैकड़ों ने छोड़ दिए घर-द्वार और अद्यावधि शरणागत हैं; ऐसा महिमान्वित-सौरभान्वित वृत्त विस्मयान्वित कर देने वाला स्वाभाविक है।

रस-सिद्ध-सन्तों की परम्परा इस ब्रजभूमि पर कभी विच्छिन्न नहीं हो पाई। श्रीजी की यह 'गह्वर-वाटिका' जो कभी पुष्पविहीन नहीं होती, शीत हो या ग्रीष्म, पतझड़ हो या पावस, एक न एक पुष्प तो आराध्य के आराधन हेतु प्रस्फुटित ही रहता है। आज भी इस अजरामर, सुन्दरतम, शुचितम, महत्तम, पुष्प (बाबाश्री) का जग 'स्वस्तिवाचन' कर रहा है। आपके अपरिसीम उपकारों के लिए हमारा अनवरत वन्दन अनुक्षण प्रणति भी न्यून है।

श्लोक संख्या सूचिका

क

क्ष

ख

प

ब

भ

म

य

र

ल

स

ह

जय श्री राधे
श्रीराधासुधानिधि
श्री मानमंदिर सेवा संस्थान
गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)

श्रीराधासुधानिधि स्तोत्रम्

यस्याः कदापि वसनाञ्चल खेलनोत्थ
धन्यातिधन्य पवनेन कृतार्थमानी ।
योगीन्द्र-दुर्गम-गति-र्मधुसूदनोऽपि
तस्या नमोऽस्तु वृषभानुभुवो दिशेऽपि ॥ १ ॥

नमस्कारात्मक मंगलाचरण –

जिन वृषभानुनन्दिनी के नीलाञ्चल के किसी लीला में उठने से अति धन्य वायु का स्पर्श पाकर योगीन्द्रों को भी अति दुर्लभ गति वाले मधुभोगी (कृष्ण भी) अपने को कृतार्थ मानते हैं, उनकी दिशा को नमस्कार है ।

ब्रह्मेश्वरादि-सुदुरूह-पदारविन्द –
श्रीमत्पराग-परमाद्भुत-वैभवायाः ।
सर्वार्थसार-रसवर्षि-कृपार्द्र-दृष्टेस् –
तस्या नमोऽस्तु वृषभानुभुवो महिम्ने ॥ २ ॥

उनकी महिमा को नमस्कार –

जिनके श्रीचरणों का श्रीपराग परमाद्भुत वैभव युक्त है, जो ब्रह्मा-शंकर आदि को भी दुर्लभ है और जिनकी 'कृपा-रस से भीगी दृष्टि' सार-वस्तु 'प्रेम' की वर्षा करती है, उन्हीं वृषभानुनन्दिनी की महिमा को नमस्कार है ।

यो ब्रह्म-रुद्र-शुक-नारद-भीष्ममुख्यै –
रालक्षितो न सहसा पुरुषस्य तस्य ।
सद्यो-वशीकरण-चूर्ण-मनन्त-शक्तिम्
तं राधिका-चरणरेणु-मनुस्मरामि ॥ ३ ॥

श्रीपदरेणु-स्मरण –

जो 'परम पुरुष श्रीकृष्ण' ब्रह्माजी, शिवजी, शुकदेवजी, नारदजी और भीष्मजी जैसे महाभागवतों को भी सरलता से दिखाई नहीं पड़ते हैं, उन्हीं को तत्क्षण वश में करने वाले चूर्ण के समान अनन्त शक्तिशाली 'श्रीराधाचरणरज-कण' का बार-बार स्मरण करता हूँ ।

आधाय मूर्द्धनि यदापुरुदारगोप्यः
काम्यं पदं प्रियगुणैरपि पिच्छमौलेः ।
भावोत्सवेन भजतां रसकामधेनुम्
तं राधिका चरणरेणुमहं स्मरामि ॥४॥

श्रीपदरेणु-स्मरण –

ब्रज की उदार गोपियों ने भी जिस रज को मस्तक पर चढ़ाकर अपना इच्छित पद, मोरमुकुटी श्रीकृष्ण का भी काम्य 'श्रीराधारानी के दास्य' को प्राप्त किया था, भावभक्ति से भजने वालों के लिए कामधेनु के समान 'श्रीजी की उस चरणधूलि' का बार-बार स्मरण करता हूँ ।

दिव्य-प्रमोद-रससार-निजाङ्गसङ्ग –
पीयूषवीचि-निचयै-रभिषेचयन्ती ।
कन्दर्पकोटि-शर-मूर्च्छित-नन्दसूनु –
सञ्जीवनी जयति कापि निकुञ्जदेवी ॥५॥

जयघोष –

जो अलौकिक आनन्द और रस के सार अपने दिव्य अङ्ग-सङ्ग रूप अमृतमयी लहरों से सींचकर करोड़ों काम के बाणों से पीड़ित नन्दलाल को जीवन देने वाली हैं, जिनका वर्णन नहीं हो सकता; ऐसी उन 'निकुञ्ज-देवी' की जय हो ।

तन्नः प्रतिक्षण-चमत्कृत-चारुलीला –
लावण्य-मोहन-महा-मधुराङ्गभङ्गि ।
राधाननं हि मधुराङ्ग-कलानिधान –
माविर्भविष्यति कदा रससिन्धुसारम् ॥६॥

दिदृक्षा (दर्शन-इच्छा) –

प्रतिक्षण चमत्कारपूर्ण सुन्दर लीलाओं के लावण्य (सौन्दर्य) से मोहित करने वाली महामधुर अवयवों (नेत्र आदि) की भङ्गिमाओं से युक्त तथा कामकला का एकमात्र आश्रय 'श्रीराधाजी का मुख' जो कि रस रूपी सागर का सार रूप है, वह हमारे समक्ष कब प्रकट होगा ?

यत्-किंकरीषु बहुशः खलु काकुवाणी
नित्यं परस्य पुरुषस्य शिखण्डमौलेः ।
तस्याः कदा रसनिधे-र्वृषभानुजाया –
स्तत्केलिकुञ्ज भवनाङ्गणमार्जनीस्याम् ॥७॥

सोहनी बनने की इच्छा –

परमपुरुष मोरमुकुटी जिनकी दासियों से नित्य ही कातर-वाणी से प्रार्थनारत रहते हैं, उन रसनिधान 'वृषभानुनन्दिनी के केलि-कुञ्ज-भवन' के प्राङ्गण की सोहनी देने वाली मैं कब होऊँगी ? (जिसमें प्रवेशार्थ कृष्ण भी प्रार्थना करते हैं ।)

वृन्दानि सर्वमहतामपहाय दूराद् –
वृन्दाटवीमनुसर प्रणयेन चेतः ।
सत्तारणीकृत सुभाव सुधारसौघम्
राधाभिधानमिह दिव्य निधानमस्ति ॥८॥

स्वयं को शिक्षा –

अरे मन ! तू समग्र महत्ताओं (साधन-साध्य) के समूह को दूर से ही त्यागकर प्रेमपूर्वक वृन्दावन का ही अनुसरण कर, जिस वृन्दावन में सत्पुरुषों को संसार-सागर से पार करने के लिए भाव-सुधा-रस का समूह रूप 'श्रीराधा' नामक दिव्य आश्रय है ।

केनापि नागरवरेण पदे निपत्य
सम्प्रार्थितैक-परिरम्भ-रसोत्सवायाः ।
सभ्रू-विभंग-मतिरंगनिधेः कदा ते
श्रीराधिके नहि नहीति गिरः श्रृणोमि ॥९॥

रसमय ब्रह्म की प्राप्ति की निषेधात्मकता –

हे श्रीराधे ! कोई लोकातीत चतुर शिरोमणि (कृष्ण) आपके श्रीचरणों में गिरते हुए, आपसे एक बार परिरम्भण, जो रसमय सुख का उत्सव है, ऐसे आलिङ्गन को माँग रहे हैं और आप अपनी भौंहों को रसमय मरोड़ दे करके 'नहीं-नहीं ...' कर रही हैं; उस निषेधात्मक-कौतूहल की आप निधान हैं, उस 'नहीं-नहीं ...' की वाणी को मैं कब सुनूँगी ?

यत्पादपद्म-नखचन्द्र-मणिच्छटायाः
विस्फूर्जितं किमपि गोपवधूष्वदर्शि ।
पूर्णानुराग-रससागर-सारमूर्तिः
सा राधिका मयि कदापि कृपां करोतु ॥१०॥

कृपा की प्रार्थना –

समस्त गोपियाँ जिन 'श्रीजी के श्रीचरणकमल की श्रीनखचन्द्रमणि' की छटा का विकासमात्र हैं; जिसकी कान्ति का प्रकाश गोपियों में देखा जाता है, जो

'श्रीराधा' सम्पूर्ण अनुराग-रस-समुद्र की मूर्तिमती साररूपा हैं, वे 'राधिका' मुझ पर कभी भी कृपा करेंगी ?

उज्जृम्भमाण-रसवारि-निधेस्तरंगै –
रङ्गैरिव प्रणयलोल-विलोचनायाः ।
तस्याः कदा नु भविता मयि पुण्यदृष्टि –
र्वृन्दाटवी-नवनिकुञ्ज-गृहाधिदेव्याः ॥११॥

कृपादृष्टि-प्राप्ति की प्यास –

जिनके सभी अङ्ग उमड़ते हुए रस-समुद्र की लहरों की तरह हैं, उन प्रणय से चञ्चल नेत्रों वाली 'श्रीवन के नव-निकुञ्ज महल की अधिष्ठातृ देवी' की पवित्र दृष्टि मुझ पर कब होगी ?

वृन्दावनेश्वरि तवैव पदारविन्दम्
प्रेमामृतैक-मकरन्द-रसौघपूर्णम् ।
हृद्यर्पितं मधुपतेः स्मरतापमुग्रम्
निर्वापयत्-परमशीतल-माश्रयामि ॥१२॥

श्रीचरणाश्रय की अनन्यता –

हे श्रीवन की अधीश्वरी राधे ! तुम्हारे 'चरणकमल' ही एकमात्र प्रेमामृत रूप मकरन्द-रस प्रवाह से भरे हुए हैं, जिनके आस्वादक श्रीकृष्ण हैं, जिनका उत्कट काम-ताप उससे शान्त हो जाता है; मैं उन्हीं परम शीतल 'चरणकमलों' का सम्पूर्ण आश्रय लेती हूँ ।

राधाकरावचित-पल्लव-वल्लरीके
राधापदाङ्क-विलसन्-मधुरस्थलीके ।

राधायशो-मुखर-मत्त-खगावलीके
राधा-विहार-विपिने रमतां मनो मे ॥१३॥

मन को शिक्षा –

जहाँ की लताओं के कोमल पत्ते राधारानी के ही करकमल से सजाये हुए हैं, जहाँ के मधुर स्थल उन्हीं के चरणचिह्नों से चिह्नित हैं और जहाँ के प्रेममत्त पक्षीगण उन्हीं के यशगान में मत्त रहते हैं; मेरा मन 'श्रीराधा के उसी केलिवन' में रम जाए।

कृष्णामृतं चल विगाढु-मितीरिताहम्
तावत्-सहस्व रजनी सखि यावदेति ।
इत्थं विहस्य वृषभानुसुतेह लप्स्ये
मानं कदा रसद-केलिकदम्ब-जातम् ॥१४॥

श्रीजी से परिहास –

जब श्रीजी मुझसे कहेंगी – 'हे सखी ! कृष्णामृत में स्नान करने के लिए चल (अर्थात् यमुनाजल के बहाने कृष्ण-मिलन के लिए चल)।' तब मैं उत्तर दूँगी – 'हे सखी ! रात आने तक धैर्य धारण करो (क्योंकि विलास का समय रात्रि उचित है)'। मेरे हास्य-वचनों से केलि-स्मरण का आनन्द उत्पन्न होगा (तब वृषभानुनन्दिनी 'कदम्ब-पुष्प से ताड़ना रूप' मुझे सम्मान देंगी); तब रसदायक केलि-समूह से उत्पन्न 'मान' को कब प्राप्त करूँगी ?

(यमुना-स्नान को 'कृष्ण-मिलन' में बदल दिया, यह भाव है।)

पादाङ्गुली-निहित-दृष्टि-मपत्रपिष्णुम्
दूरादुदीक्ष्य रसिकेन्द्र-मुखेन्दुबिम्बम् ।
वीक्षे चलत्पदगतिं चरिताभिरामाम्
झङ्कार-नूपुरवतीं बत कर्हि राधाम् ॥१५॥

दर्शन की इच्छा –

दूर से रसिकश्रेष्ठ श्रीकृष्ण के मुखचन्द्रमण्डल को देखकर जिन्होंने मिलन के लिए कुञ्जभवन को जाती हुई अपनी लज्जा भरी दृष्टि को अपने ही चरणों की अँगुलियों में लगा दिया है, वे झङ्कृत नूपुर वाली, सुन्दर लीला वाली 'श्रीराधा' क्या कभी मुझे दर्शन देंगी ?

उज्जागरं रसिकनागर-सङ्गरङ्गैः
कुञ्जोदरे कृतवती नु मुदा रजन्याम् ।
सुस्नापिता हि मधुनैव सुभोजिता त्वम्
राधे कदा स्वपिषि मत्करलालितांघ्रिः ॥ १६ ॥

चरण-संवाहनादि की इच्छा –

हे श्रीराधे ! आपने अपने प्यारे चतुर श्रीश्याम के साथ कुञ्ज-भवन में प्रेम-विहार के आनन्द में सारी रात जागकर ही बिता दी । सुन्दर स्नान एवं मधुर भोजन कराकर मैं कब अपने हाथों से आपकी चरण-सेवा करूँ और आप शयन करेंगी ?

वैदग्ध्यसिन्धु-रनुराग-रसैकसिन्धु –
र्वात्सल्यसिन्धु-रतिसान्द्र-कृपैकसिन्धुः ।
लावण्यसिन्धु-रमृतच्छवि-रूपसिन्धुः
श्रीराधिका स्फुरतु मे हृदि केलि सिन्धुः ॥ १७॥

अनेक सिन्धुओं का सम्मिलित रूप 'श्रीराधा' –

समस्त षोडशादि कलाओं में निपुणता की सिन्धु, अनुराग-रस की सिन्धु, वात्सल्य की सिन्धु, घनीभूत कृपा की एकमात्र सिन्धु, लावण्य की सिन्धु, अखण्ड कान्ति वाले रूप की सिन्धु और क्रीड़ा-सिन्धु 'श्रीराधा' हमारे हृदय में स्फुरित हों ।

(गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते।)

दृष्ट्वैव चम्पकलतेव चमत्कृताङ्गी
वेणुध्वनिं क्व च निशम्य च विह्वलाङ्गी ।
सा श्यामसुन्दर-गुणै-रनुगीयमानैः
प्रीता परिष्वजतु मां वृषभानुपुत्री ॥१८॥

श्रीजी के आलिङ्गन-कृपा का पुरस्कार –

जो 'श्रीराधा' अपने प्यारे श्याम को देखते ही सभी अङ्गों से चम्पकलता के समान प्रफुल्लित हो जाती हैं, उनके वंशीनाद को सुनकर विह्वल हो जाती हैं, वे मेरे द्वारा गाये हुए अपने प्रियतम श्याम के गुणों को सुनकर मुझे सप्रेम आलिङ्गित करेंगी ।

श्रीराधिके सुरतरङ्गि-नितम्बभागे
काञ्चीकलाप-कलहंस-कलानुलापैः ।
मञ्जीर-शिञ्जित-मधुव्रत-गुञ्जितांघ्रि –
पङ्केरुहैः शिशिरय स्वरसच्छटाभिः ॥१९॥

रस-छटा के अभिसिञ्चन का पुरस्कार –

हे श्रीराधे ! सुरत-क्रीड़ा-रंगी नितम्ब वाली आपकी 'कौंधनी' की झनकार ही हंसों का सुन्दर क्वणन है, आपके श्रीचरणकमल-नूपुरों की झनकार ही मदमत्त भौंरों का गुञ्जन है; आप अपनी रसभरी छटाओं से मुझे शीतल करें ।

श्रीराधिके सुरतरङ्गिणि दिव्यकेलि –
कल्लोलमालिनि लसद्-वदनारविन्दे ।
श्यामा-मृताम्बुनिधि-सङ्गम-तीव्रवेगि –
न्यावर्त्त-नाभिरुचिरे मम सन्निधेहि ॥२०॥

सामीप्य-प्राप्ति की याचना –

हे श्रीराधे ! देवनदी के समान आप दिव्य लहरों की माला वाली, शोभित कमलमुख वाली, कृष्ण रूपी नीले सागर से संगम के लिए तीव्र वेग वाली, नाभिरूप भँवर वाली ! आप मुझे अपना सान्निध्य प्रदान करें ।

सत्प्रेमसिन्धु-मकरन्द-रसौघधारा –
सारा-नजस्त्र-मभितः स्त्रवदाश्रितेषु ।
श्रीराधिके तव कदा चरणारविन्दम्
गोविन्द-जीवनधनं शिरसा वहामि ॥२१॥

श्रीचरण-धारणेच्छा –

जिन 'श्रीजी के चरणकमल' गोविन्द के जीवन-धन हैं, उन्हें कब अपने सिर पर धरूँगी, जो चरणाश्रितों पर शुद्ध प्रेमसागर के सुस्वादु मकरन्द रस की सार 'धारा' को चतुर्दिक् बरसाते रहते हैं ।

सङ्केतकुञ्ज-मनु-कुञ्जर-मन्दगामि –
न्यादाय दिव्य-मृदु-चन्दन-गन्धमाल्यम् ।
त्वां कामकेलि-रभसेन कदा चलन्तीम्
राधेऽनुयामि पदवी-मुपदर्शयन्ती ॥२२॥

'मिलन-कुञ्ज' की सेवा –

आप 'मिलन-कुञ्ज' में काम-क्रीड़ा की उत्कण्ठा से गजगामिनी रूप से आ रही हैं; मैं शीतल, कोमल चन्दन एवं सुगन्धित पुष्पमाला आदि दिव्य सामग्री लेकर उस कुञ्ज का लक्ष्य कराती हुई आपका कब अनुगमन करूँगी ?

गत्वा कलिन्दतनया-विजनावतार –
मुद्वर्त्तयन्त्य-मृत-मङ्ग-मनङ्गजीवम् ।
श्रीराधिके तव कदा नवनागरेन्द्रम्
पश्यामि मग्न नयनं स्थितमुच्चनीपे ॥२३॥

यमुना-स्नान –

हे श्रीराधिके ! आप स्नानार्थ कालिन्दी के किसी निर्जन घाट पर पधारें और मैं दिव्य काम को जीवन देने वाले आपके उन श्री-अङ्गों का जब उबटन करूँ, उस समय पास के ऊँचे कदम्ब पर 'चतुरशिरोमणि कृष्ण को आपको देखते हुए' कब देखूँगी ?

सत्प्रेमराशि-सरसो विकसत्-सरोजम्
स्वानन्द-सीधु-रससिन्धु-विवर्द्धनेन्दुम् ।
तच्छ्रीमुखं कुटिल-कुन्तल-भृङ्गजुष्टम्
श्रीराधिके तव कदा नु विलोकयिष्ये ॥२४॥

'श्रीमुखकमल' दर्शनेच्छा –

हे श्रीराधे ! मैं कब आपके उस 'श्रीमुखकमल' का दर्शन करूँगी, जो प्रेम-पुञ्ज के सरोवर का खिला हुआ कमल है, जो आनंददायक मादक रससमुद्र को बढ़ाने वाला पूर्ण चन्द्र है; जिस मुखकमल के चारों ओर घुँघराली लटें मतवाले भौरों के समान लटक रही हैं ।

लावण्यसाररससारसुखैकसारे
कारुण्यसारमधुरच्छविरूपसारे ।

वैदग्ध्यसाररतिकेलिविलाससारे
राधाभिधे मम मनोऽखिलसारसारे ॥२५॥

समस्त सार वस्तुओं का सार 'श्रीराधा' –

जो लावण्य का सार है, रस का सार है, सभी सुखों का एकमात्र सार है, करुणा का सार है, मधुर छवि वाले रूप का सार है, चतुरता का सार है, रतिक्रीड़ा के विलास का भी सार है; वही राधा नामक तत्त्व सभी सारों का सार है, उसी में मेरा मन रमण करे ।

चिन्तामणिः प्रणमतां व्रजनागरीणाम्
चूडामणिः कुलमणिर्वृषभानुनाम्नः ।
सा श्यामकामवरशान्तिमणिर्निकुञ्ज –
भूषामणिर्हृदयसम्पुटसन्मणिर्नः ॥२६॥

सभी का सार मणि रूप 'राधा' –

जो प्रणाम करने वालों के लिए चिन्तामणि हैं, जो ब्रज की नवीन तरुणियों की चूडामणि हैं, जो वृषभानुजी के वंश की मणि हैं, जो श्यामसुन्दर के काम की शान्ति की श्रेष्ठ मणि हैं, जो निकुञ्ज-भवन की भूषणमणि हैं; वही मेरे हृदय की दिव्य मणि 'श्रीराधा' हैं ।

मञ्जुस्वभावमधिकल्पलतानिकुञ्जम्
व्यञ्जन्तमद्भुतकृपारसपुञ्जमेव ।
प्रेमामृताम्बुधिमगाधमबाधमेतम्
राधाभिधं द्रुतमुपाश्रय साधु चेतः ॥२७॥

आश्रय का चमत्कार –

हे मेरे साधु मन ! (साधु कहने से समस्त दैवी सम्पत्तियाँ अपने आप आ

गयीं ।) तू उसी राधा नाम वाले प्रेमामृत के अगाध और अबाध समुद्र का शीघ्र आश्रय कर, जिनका स्वभाव अति कोमल है तथा जो कल्पवृक्ष के निकुञ्ज में विराजती हुई अद्भुत कृपारस-राशि का वितरण करती रहती हैं ।

(‘अबाध’ कहने से तात्पर्य - कल्मषों की बाधा नहीं आयेगी) ।

श्रीराधिकां निजविटेन सहालपन्तीम्
शोणाधरप्रसृमरच्छविमञ्जरीकाम् ।
सिन्दूरसंवलितमौक्तिकपंक्तिशोभाम्
यो भावयेद्दशनकुन्दवतीं स धन्यः ॥२८॥

रसिकजनों की धन्यता –

श्रीराधिका अपने में लाम्पट्य रूप से आसक्त कृष्ण के साथ बातों में लगी हैं, जिससे उनके लाल-लाल ओठों से निकलती हुई सौन्दर्य-राशि चारों ओर फैल रही है, जिनकी दन्तपंक्ति सिन्दूर से सनी मोतियों की लड़ी को भी लज्जित कर रही हैं तथा जो कुन्दकली के समान दन्त-पंक्ति वाली हैं; ऐसी ‘श्रीराधा’ का जो ध्यान करता है, वह धन्य है ।

पीतारुणच्छविमनन्ततडिल्लताभाम्
प्रौढानुरागमदविह्वलचारुमूर्तिम् ।
प्रेमास्पदां व्रजमहीपतितन्महिष्यो –
र्गोविन्दवन्मनसि तां निदधामि राधाम् ॥२९॥

अन्तःकरण में साक्षात्कार –

उन ‘श्रीराधा’ को अपने मन में धारण करती हूँ, जिनकी छवि पीले और ललायी से निकले हुए स्वर्णवत् है; इनकी आभा अनन्त विद्युतमाला की चमक के

समान है, जिनकी सुन्दर मूर्ति प्रौढ़ अनुराग से विह्वल है और जो नन्द और यशोदा के लिए गोविन्द के समान प्रेमपात्र हैं ।

निर्माय चारुमुकुटं नवचन्द्रकेण
गुञ्जाभिरारचितहारमुपाहरन्ती ।
वृन्दाटवीनवनिकुञ्जगृहाधिदेव्याः
श्रीराधिके तव कदा भवितास्मि दासी ॥३०॥

कृपापात्र बनने की प्रार्थना –

हे श्रीराधे ! आप श्रीवन के नवीन निकुञ्जों की अधिदेवी हैं । नई-नई मयूर की चन्द्रिकाओं से निर्मित सुन्दर मोरमुकुट और गुञ्जा (घुँघची) से बने हार का उपहार आपको देने वाली आपकी दासी मैं कब बनूँगी ?

संकेतकुञ्जमनुपल्लवमास्तरीतुम्
तत्तत्प्रसादमभितः खलु संवरीतुम् ।
त्वां श्यामचन्द्रमभिसारयितुं धृताशे
श्रीराधिके मयि विधेहि कृपाकटाक्षम् ॥३१॥

कृपादृष्टि-प्राप्ति की प्रार्थना –

मेरे मन में यही आशा है कि संकेत-कुञ्जों में नई-नई पल्लवों की सुन्दर शय्या बनाकर वहाँ प्रियतम श्याम से मिलाने के लिए आपको छिपाकर ले जाऊँ, इस सेवा से आप प्रसन्न हो जायेंगी; ऐसी कृपा करें ।

दूरादपास्य स्वजनान्सुखमर्थकोटिम्
सर्वेषु साधनवरेषु चिरं निराशः ।

वर्षन्तमेव सहजाद्भुतसौख्यधाराम्
श्रीराधिकाचरणरेणुमहं स्मरामि ॥३२॥

श्रीजी की चरणरेणु का स्मरण –

अपने ममतास्पद स्वजनों और करोड़ों सम्पत्तियों के सुख को दूर से ही छोड़कर, परमार्थ के सभी उच्च साधनों से निराश होकर आश्चर्यमयी सुखधारा को बरसाने वाली 'श्रीराधिका के चरणरज-कण' का मैं स्मरण करती हूँ ।

वृन्दाटवीप्रकटमन्मथकोटिमूर्त्तेः
कस्यापि गोकुलकिशोरनिशाकरस्य ।
सर्वस्वसम्पुटमिव स्तनशातकुम्भ –
कुम्भद्वयं स्मर मनो वृषभानुपुत्र्याः ॥३३॥

चिन्मय 'श्री-स्तन' स्मरण –

ओ मेरे मन ! तू वृषभानु लाड़िली के दोनों स्तनों का स्मरण कर, जो युगल स्वर्णकलश के समान हैं और जो श्रीवृन्दावन में विराजमान करोड़ों काममूर्ति के समान गोकुल चन्द्रमा कृष्ण के सम्पूर्ण धन की पिटारी के समान हैं ।

सान्द्रानुरागरससारसरः सरोजम्
किं वा द्विधा मुकुलितं मुखचन्द्रभासा ।
तन्नूतनस्तनयुगं वृषभानुजायाः
स्वानन्दसीधुमकरन्दघनं स्मरामि ॥३४॥

अप्राकृत स्तनों का स्मरण –

वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाजी के नित्य नवीन 'युगल स्तन' घनीभूत अनुराग-रस के सार रूपी सरोवर में उत्पन्न कमल के समान हैं और वही 'स्तन-कमल' मुखचन्द्र की कान्ति से दो रूपों में मुकुलित हो रहे हैं तथा परमानन्द के मादक

(मोहक) एवं घनीभूत मकरन्द-रस से परिपूर्ण हैं; मैं उन दोनों स्तनों का ध्यान करती हूँ ।

क्रीडासरः कनकपङ्कजकुड्मलाय
स्वानन्दपूर्णरसकल्पतरोः फलाय ।
तस्मै नमो भुवनमोहनमोहनाय
श्रीराधिके तव नवस्तनमण्डलाय ॥३५॥

चिन्मय 'श्री-स्तन' स्मरण –

हे श्रीराधे ! लीला-सरोवर की सुनहरी दो कमल-कली के समान आपके अपने ही आनन्द से पूर्ण, रस-कल्पवृक्ष फल के समान त्रिलोकी को मोहन करने वाले मोहनलाल को भी मोहित करने वाले आपके नित्य नवीन 'स्तन-मण्डल'को नमस्कार ।

पत्रावलीं रचयितुं कुचयोः कपोले
बद्धुं विचित्रकबरीं नवमल्लिकाभिः ।
अङ्गं च भूषयितुमाभरणैर्धृताशे
श्रीराधिके मयि विधेहि कृपावलोकम् ॥३६॥

कृपादृष्टि की प्रार्थना –

मेरी यही आशा है कि आपकी ऐसी कृपादृष्टि हो जाए कि आपके दोनों स्तन-मण्डल पर और कपोलों पर चित्रावली बनाऊँ और मल्लिका (बेला) के नए-नए फूलों को गूँथकर विचित्र रीति से आपका जूड़ा बनाऊँ एवं सुन्दर कोमल अङ्गों में गहने सजाऊँ ।

श्यामेति सुन्दरवरेति मनोहरेति
कन्दर्पकोटिललितेति सुनागरेति ।

सोत्कण्ठमह्नि गृणती मुहुराकुलाक्षी
सा राधिका मयि कदा नु भवेत्प्रसन्ना ॥३७॥

प्रेम-वैचित्री –

जो दिन में उत्कण्ठा से भरकर "हे श्याम ! हे सुन्दर !! हे श्रेष्ठ !!! हे मन का हरण करने वाले !!! हे करोड़ों कामदेव से भी सुन्दर !!! हे चतुर शिरोमणे !!!" इन शब्दों को बारम्बार गाती हैं, वे व्याकुल नेत्रों वाली 'श्रीराधिका' मुझ पर कब प्रसन्न होंगी ?

वेणुः करान्निपतितः स्खलितं शिखण्डम्
भ्रष्टं च पीतवसनं व्रजराजसूनोः ।
यस्याः कटाक्षशरपातविमूर्च्छितस्य
तां राधिकां परिचरामि कदा रसेन ॥३८॥

रसभरी इच्छा –

जिनके नेत्रों के बाणों की चोट से ब्रजराज नन्दकुमार के हाथों से मुरली गिर पड़ती है और मस्तक का मोरमुकुट भी खिसक जाता है, यहाँ तक कि पीताम्बर भी छूट जाता है तथा वे मूर्च्छित होकर गिर जाते हैं; ऐसी 'श्रीराधा' की मैं कब प्रेम से सेवा करूँगी ?

तस्या अपाररससारविलास मूर्त्ते –
रानन्दकन्दपरमाद्भुतसौम्यलक्ष्म्याः ।
ब्रह्मादिदुर्गमगते र्वृषभानुजायाः
कैङ्कर्यमेव मम जन्मनि जन्मनि स्यात् ॥३९॥

तीव्र इच्छा –

जो अपार रस के सागर की विलासमूर्ति हैं, आनन्द की मूल हैं, परमाद्भुत

सुख की सम्पति हैं, जिनकी गति ब्रह्मा आदि भी नहीं जान सकते; उन वृषभानुलाड़िली का कैङ्कर्य (दासी भाव) मुझे प्रत्येक जन्म में प्राप्त हो ।

पूर्णानुरागरसमूर्ति तडिल्लताभम्
ज्योतिः परं भगवतो रतिमद्रहस्यम् ।
यत्प्रादुरस्ति कृपया वृषभानु गेहे
स्यात्किङ्करी भवितुमेव ममाभिलाषः ॥४०॥

'श्रीमुख' स्मरण –

जो कृपा से ही वृषभानुभवन में प्रकट हुई हैं, जो रहस्यमयी परम ज्योतिर्मयी हैं, जो विद्युल्लता के समान दीप्तिमती हैं; जो परम पुरुष भगवान् कृष्ण को भी अपने आप में रमण करा लेती हैं, जो पूर्ण अनुराग-रस की मूर्ति हैं; मैं उनकी दासी बनूँ, यही इच्छा है ।

प्रेमोल्लसद्रसविलासविकासकन्दम्
गोविन्दलोचनवितृप्तचकोरपेयम् ।
सिञ्चन्तमद्भुतरसामृतचन्द्रिकौघैः
श्रीराधिका वदनचन्द्रमहं स्मरामि ॥४१॥

'श्रीमुखचन्द्र' स्मरण –

जो प्रेम के उल्लास से भरे हुए रसमय विलास के विकास का बीज है और गोविन्द के प्यासे नेत्र चकोरों के लिए पानरूप है, उस अद्भुत रसामृत चन्द्रिकाओं के समूहों से श्रीकृष्ण एवं सखियों को सींचने वाले 'श्रीराधामुखचन्द्र' का स्मरण करती हूँ ।

संकेतकुञ्जनिलये मृदुपल्लवेन
क्लृप्ते कदापि नवसंगभयत्रपाढ्याम् ।
अत्याग्रहेण करवारिरुहे गृहीत्वा
नेष्ये विटेन्द्रशयने वृषभानुपुत्रीम् ॥४२॥

तीव्र इच्छा –

प्रथम मिलन के समय भय और लज्जा से भरी हुई वृषभानुलाड़िली को संकेतित कुञ्ज-सदन में अत्यन्त आग्रहपूर्वक उनका करकमल पकड़कर कोमल पल्लवों से बनी 'जार-शिरोमणि की शय्या' पर कब ले जाऊँगी ?

(नयो नेह नव रंग नयो रस, नवल श्याम वृषभानुकिशोरी । (हित चतुरासी) 'चिन्मय वपु' में नित्य नवीनता रहती है, इसलिए नित्य नवीन मिलन होता है, जिसकी कल्पना प्राकृत राज्य में हम लोग नहीं कर सकते ।)

सद्गन्धमाल्यनवचन्द्रलवङ्गसङ्ग –
ताम्बूलसम्पुटमधीश्वरि मां वहन्तीम् ।
श्यामं तमुन्मदरसादभिसंसरन्ती
श्रीराधिके करुणयानुचरीं विधेहि ॥४३॥

उत्कट अभिलाषा –

हे श्रीराधे ! आप अपनी कृपा से मुझे ऐसी दासी बनाइये कि जब आप रस के उन्माद से भरकर अपने प्रियतम के समीप जाने लगें, उस समय सुगन्धित मालायें तथा नए कर्पूर लवंगयुक्त ताम्बूल (पानदान) लेकर चलूँ ।

श्रीराधिके तव नवोद्गमचारुवृत्त –
वक्षोजमेव मुकुलद्वयलोभनीयम् ।

श्रोणीं दधद्रसगुणैरुपचीयमानम्
कैशोरकं जयति मोहनचित्तचोरम् ॥४४॥

तीव्र इच्छा –

हे श्रीराधे ! आपके कमल की कलियों के समान मोहित करने वाले दो उभरेहुए गोलाकार स्तन, श्रीकृष्ण के नित्य भोग आदि गुणों द्वारा बढ़ता हुआ श्रोणिभार, उनके भी चित्त को हरण करने वाला आपका नव कैशोर विजय को प्राप्त हो रहा है ।

संलापमुच्छलदनङ्गतरङ्गमाला –
संक्षोभितेन वपुषा व्रजनागरेण ।
प्रत्यक्षरं क्षरदपाररसामृताब्धिम्
श्रीराधिके तव कदा नु शृणोम्यदूरात् ॥४५॥

अभिलाषा –

आपकी 'बातचीत' जो अनेक काम की लहरों की माला से उछलते हुए श्रीवपु को आनन्दित कर रही है, ऐसे कृष्ण के साथ जिस वार्ता में प्रत्येक अक्षर रसामृतसिन्धु का झरना बना है, उस महामधुर वार्ता को निकट से कब सुनूँगी ?

अङ्कस्थितेऽपि दयिते किमपि प्रलापम्
हा मोहनेति मधुरं विदधत्यकस्मात् ।
श्यामानुरागमदविह्वलमोहनाङ्गी
श्यामामणिर्जयति कापि निकुञ्जसीम्नि ॥४६॥

प्रेम-वैचित्री –

गोद में स्थित होने पर भी अकस्मात् 'हा मोहन !' ऐसा प्रलाप करने लगती

हैं, ऐसी कृष्ण के अनुराग के मद से विह्वल और मधुर अङ्गवाली नित्य 'किशोरीमणि' निकुञ्ज-प्रदेश में विजय को प्राप्त हो रही हैं ।

कुञ्जान्तरे किमपि जातरसोत्सवायाः
श्रुत्वा तदालपितशिंजितमिश्रितानि ।
श्रीराधिके तव रहःपरिचारिकाहम्
द्वारस्थिता रसह्रदे पतिता कदा स्याम् ॥४७॥

उत्कट इच्छा –

आप निभृत निकुञ्ज में प्रियतम के साथ किसी गुप्त रसोत्सव में मग्न हैं, जिसमें आभूषणों की ध्वनि से मिली हुई आपकी मधुर बातचीत सुनाई पड़ रही है; मैं ऐकान्तिक परिचारिका होकर उसे कब सुनूँ और सुनकर रस-सरोवर में डूब जाऊँ ?

वीणां करे मधुमतीं मधुरस्वरां ता –
माधाय नागरशिरोमणिभावलीलाम् ।
गायन्त्यहो दिनमपारमिवाश्रुवर्षै –
र्दुःखान्नयन्त्यहह सा हृदि मेऽस्तु राधा ॥४८॥

प्रेम-विरह का वर्णन –

मधुर स्वर वाली 'मधुमती' नाम की अपनी वीणा को करकमलों से उठाकर, चतुरशिरोमणि प्रियतम की भाव-लीलाओं को गाती रहती हैं; निरन्तर आँसुओं को बहाते हुए विरहजन्य कष्ट से दिन बिताती हैं; ऐसी प्रेम से विह्वल 'श्रीराधा' मेरे हृदय में निवास करें ।

अन्योन्यहासपरिहासविलासकेलि –
वैचित्र्यजृम्भितमहारसवैभवेन ।

वृन्दावने विलसतापहृतं विदग्ध –
द्वन्द्वेन केनचिदहो हृदयं मदीयम् ॥४९॥

विलासरस –

वृन्दावन में परस्पर के हास-परिहास से युक्त विलास-क्रीड़ा की विचित्रता से भरी हुई एवं महारस के वैभव से भरी हुई लीला करने वाले किन्हीं 'चतुरशिरोमणि युगल' ने मेरा चित्त छीन लिया है ।

महाप्रेमोन्मीलन्नवरससुधासिन्धुलहरी –
परीवाहैर्विश्वं स्नपयदिव नेत्रान्तनटनैः ।
तडिन्मालागौरं किमपि नवकैशोरमधुरम्
पुरन्ध्रीणां चूडाभरणनवरत्नं विजयते ॥५०॥

जयस्वरूपा किशोरी –

बिजलियों की माला जैसी गोरी, नवीन किशोर अवस्था से मधुर, ब्रज की चतुर नायिकाओं की शिरोभूषण, नवीन रत्नरूपा 'श्रीराधा' सर्वाधिक उत्कृष्ट रूप से शोभित हैं; जो अपने कटाक्षों के नर्तन से, महाप्रेम से प्रकट होने वाले रसामृतसिन्धु की लहरों के प्रवाह से, अनन्त विश्व को स्नान करा रही हैं; उनकी जय हो ।

अमन्द प्रेमाङ्क श्लथ सकल निर्बन्ध हृदयम्
दयापारं दिव्यच्छवि मधुर लावण्य ललितम् ।
अलक्ष्यं राधाख्यं निखिलनिगमैरप्यतितराम्
रसाम्भोधेः सारं किमपि सुकुमारं विजयते ॥५१॥

वेदों में अलक्ष्य 'किशोरी' वर्णन –

तीव्र व शुद्ध प्रेम के कारण जिनके सभी आग्रह शिथिल हो गए हैं, जो अलौकिक कान्ति के कारण 'माधुर्य और लावण्य' से ललित बनी हुई हैं, वे दयालुता

की सीमा हैं; समस्त वेदों से अत्यन्त अलक्षित हैं, रस-समुद्र की सार हैं; उन अनिर्वचनीय सुकुमारी 'श्रीराधा' की जय हो ।

दुकूलं बिभ्राणामथ कुचतटे कञ्चुकपटम्
प्रसादं स्वामिन्याः स्वकरतलदत्तं प्रणयतः ।
स्थितां नित्यं पार्श्वे विविधपरिचर्यैकचतुराम्
किशोरीमात्मानं किमिह सुकुमारीं नु कलये ॥५२॥

कैङ्कर्य का स्वरूप –

स्वामिनी (श्रीराधा) के द्वारा प्रेमपूर्वक अपने करकमल से दी हुई प्रसादी ओढ़नी और चोली धारणकर मैं निश्चित अपने आपको ऐसी सुकुमार किशोरी के रूप में अनुभव करूँगी जो अनेक सेवाओं में पूर्ण निपुण है तथा आपके नित्य समीप में स्थित है ।

विचिन्वन्ती केशान् क्वचन करजैः कञ्चुकपटम्
क्व चाप्यामुञ्चन्ती कुचकनकदीव्यत्कलशयोः ।
सुगुल्फे न्यस्यन्ती क्वचन मणिमञ्जीरयुगलम्
कदा स्यां श्रीराधे तव सुपरिचारिण्यहमहो ॥५३॥

सेवा का स्वरूप –

हे श्रीराधे ! क्या कभी अँगुलियों से आपके केशों को सुलझाती हुई, आपके दिव्य स्वर्णकलशों के समान गोल दिव्य स्तनमण्डलों पर कञ्चुकी धारण कराती हुई और कभी आपके गुल्फों में मणिनूपुर पहनाती हुई दासी बनूँगी ?

अतिस्नेहाद्-उच्चैरपि च हरिनामानि गृणतस् –
तथा सौगन्धाद्यैर्बहुभिरुपचारैश्च यजतः ।

परानन्दं वृन्दावनमनुचरन्तं च दधतो –

मनो मे राधायाः पदमृदुलपद्मे निवसतु ॥५४॥

सभी उपासनाओं का लक्ष्य 'कैङ्कर्य' –

पराकाष्ठा के स्नेह से उच्च स्वर से हरिनामों को लेते हुए, सुगन्ध आदि अनेक सामग्रियों से पूजन करते हुए, परमानन्द को धारण करते हुए, धामवास करते हुए, मेरा मन 'राधारानी के कोमल चरणकमलों' में ही रहे ।

निजप्राणेश्वर्याः यदपि दयनीयेयमिति माम्

मुहुश्चुम्बत्यालिङ्गतिसुरतमाध्व्या मदयति ।

विचित्रां स्नेहर्द्धिं रचयति तथाप्यद्भुतगतेस् –

तवैव श्रीराधे पदरसविलासे मम मनः ॥५५॥

किङ्करी भाव की अनन्यता –

प्रियतम कृष्ण अपनी प्राणेश्वरी 'श्रीराधा' की दयापात्र जानकर मुझे बार-बार चुम्बन, आलिङ्गन युक्त सुरत-माधुरी से मत्त बना देते हैं; इस प्रकार की स्नेहवृद्धि की रचना करते हैं, फिर भी मेरा मन हे श्रीराधे ! आपके श्रीचरणों के ही रस-विलास में रहता है ।

प्रीतिं कामपि नाममात्रजनितप्रोद्दामरोमोद्गमाम्

राधामाधवयोः सदैव भजतोः कौमार एवोज्ज्वलाम् ।

वृन्दारण्यनवप्रसूननिचयानानीय कुञ्जान्तरे

गूढं शैशवखेलनैर्बत कदा कार्यो विवाहोत्सवः ॥५६॥

विवाहोत्सव-लीला –

अवर्णनीय उज्ज्वल प्रेम पूर्ण कौमार-अवस्था का सदैव सेवन करने वाले युगल सरकार, परस्पर के नामोच्चारण मात्र से रोमाञ्चित होने वाले, क्या कभी ऐसा

होगा कि मैं श्रीवन से नए-नए पुष्प-समूहों को लाकर शैशव के अनुरूप क्रीडा की अवस्था में ही उनकी विवाह-लीला मनाऊँगी ?

विपञ्चितसुपञ्चमं रुचिरवेणुना गायता
प्रियेण सह वीणया मधुरगानविद्यानिधिः ।
करीन्द्रवनसम्मिलन्मदकरिण्युदारक्रमा
कदा नु वृषभानुजा मिलतु भानुजारोधसि ॥५७॥

युगलगान-माधुर्य –

जो श्रीराधा मधुर 'गान-विद्या-निधि' हैं, वन में मत्त गजराज से मिलने के लिये जाती हुयी मदोन्मत्त हथिनी के समान हैं (अर्थात् गजगामिनी हैं), जिनकी गति परम उदार है; वे 'श्रीवृषभानुनन्दिनी' मनोहर वंशी से पञ्चम स्वर में गाते हुये प्रियतम श्रीकृष्ण के साथ वीणा द्वारा संगति कर रही हैं; वे (श्रीराधा) यमुना-पुलिन पर मुझे कब मिलेंगी ?

सहासवरमोहनाद्भुतविलासरासोत्सवे
विचित्रवरताण्डवश्रमजलार्द्रगण्डस्थलौ ।
कदा नु वरनागरीरसिकशेखरौ तौ मुदा
भजामि पदलालनाल्ललितवीजनं कुर्वती ॥५८॥

रासविलासोत्सव-दर्शन –

हास-परिहास से युक्त, अतीव मोहक एवं अद्भुत विलासपूर्ण रासोत्सव में चतुर नागरी श्रीकिशोरीजी एवं रसिकशिरोमणि श्रीकृष्ण विचित्र उद्धत नृत्य कर रहे हैं, अतएव श्रम के कारण निकले हुए पसीने से जिनके कपोल भींग गए हैं, उन श्यामा-श्याम के चरणों को लाड़ लड़ाती एवं मधुर हवा करती हुई प्रसन्नतापूर्वक उनको कब भजूँगी ?

वृन्दारण्यनिकुञ्जमञ्जुलगृहेष्वात्मेश्वरीं मार्गयन्
हा राधे सविदग्धदर्शितपथं किं यासि नेत्यालपन् ।
कालिन्दीसलिले च तत्कुचतटीकस्तूरिकापङ्किले
स्नायं स्नायमहो कुदेहजमलं जह्यां कदा निर्मलः ॥५९॥

कालिन्दी-स्नान का महत्व –

वृन्दावन के कमनीय निकुञ्ज-भवन में अपनी स्वामिनी को ढूँढती हुई तथा स्वामिनी से यह कहती हुई – 'परम चतुर श्रीकृष्ण द्वारा प्रदर्शित पथ से आप क्यों नहीं जा रही हैं ?' ऐसा कहते हुए श्रीराधाजी के यमुना-स्नान के कारण कुच-प्रान्त पर लगी कस्तूरी से मिश्रित यमुना-जल में पुनः पुनः स्नान करके कुत्सित देहमल को त्यागकर कब निर्मल बनूँगी ?

पादस्पर्शरसोत्सवं प्रणतिभिर्गोविन्दमिन्दीवर –
श्यामं प्रार्थयितुं सुमञ्जुलरहःकुञ्जांश्च सम्मार्जितुम् ।
मालाचन्दनगन्धपूगरसवत्ताम्बूलसत्पानका –
न्यादातुं च रसैकदायिनि तव प्रेष्या कदा स्यामहम् ॥६०॥

सेवा की रसरूपता –

जिनके चरणों का स्पर्श ही रस का उत्सव है । नीलकमल के समान श्यामवर्ण वाले उन गोविन्द को प्रणाम सहित बुलाने के लिए, मनोहर एकान्त कुञ्जों के मार्जन के लिए, सुगन्धित माला-चन्दन, सम्पूर्ण रसयुक्त सुपारी वाला ताम्बूल (पान का बीड़ा), परिमलपात्र (इत्रदान) व स्वादिष्ट पेय-पदार्थ लाने के लिए रसदात्री स्वामिनी की कब दासी बनूँगी ?

लावण्यामृतवार्त्तया जगदिदं सम्प्लावयन्ती शरद्
राकाचन्द्रमनन्तमेव वदनज्योत्स्नाभिरातन्वती ।

श्रीवृन्दावनकुञ्जमञ्जुगृहिणी काप्यस्ति तुच्छामहो
कुर्वाणाखिलसाध्यसाधनकथां दत्त्वा स्वदास्योत्सवम् ॥६१॥

परिचर्या की इच्छा –

'श्रीकिशोरीजी' श्रीवृन्दावन के मनोरम निकुञ्ज-भवन की अपूर्व परम कमनीय गृहिणी (नायिका) हैं, जो अपनी मनोहारी व रसीली वार्ता से इस समग्र संसार को आप्लावित कर रही हैं एवं जो अपनी मुख-कान्ति के द्वारा अनन्त पूर्णिमा के चन्द्रों का विकास कर रही हैं तथा सम्पूर्ण साध्य-साधन की कथा को तुच्छ बना रही हैं; ऐसी उन 'श्रीराधा' को अपना दास्योत्सव समर्पित कर (मैं कब सफल बनूँगी ?)

दिष्ट्या यत्र क्वचन विहिताम्रेडने नन्दसूनोः
प्रत्याख्यानच्छलत उदितोदारसङ्केतदेशा ।
धूर्तेन्द्र त्वद्वयमुपगता सा रहो नीपवाट्याम्
नैका गच्छेत् कितव कृतमित्यादिशेत् कर्हि राधा ॥६२॥

संकेत-स्थल की चातुरी –

मेरे कई बार प्रार्थना करने पर अस्वीकार करने के बहाने मेरे सौभाग्य से ही संकेत-स्थान बता दिया किन्तु 'तुम धूर्त शिरोमणि हो और छलिया हो' इस आशंका से तुमसे मिलने कदम्ब-वाटिका में अकेली न जा सकेंगी; मुझे उस समय संग ले जाने के लिए 'श्रीराधा' कब आदेश देंगी ?

सा भ्रूनर्तनचातुरी निरुपमा सा चारुनेत्राञ्चले
लीलाखेलनचातुरी वरतनोस्तादृग्वचश्चातुरी ।
सङ्केतागम चातुरी नवनवक्रीड़ाकला चातुरी
राधाया जयतात् सखीजनपरीहासोत्सवे चातुरी ॥६३॥

अनेक प्रकार की चतुरताएँ –

दिव्य कान्ति संपन्न 'श्रीस्वामिनी' की वह भौंहों को नचाने की अनुपम चतुरता, सुन्दर नेत्र कोरों का लीलायुक्त कटाक्ष, सुन्दर मुखवाली की मनोहर वाक्-चातुरी, मिलन-स्थल में आने-जाने की चातुरी, नई-नई क्रीड़ा-कलाओं की चतुरता एवं सखीजनों के साथ हास-परिहास की चतुरता; सभी एक से एक उत्कृष्ट हैं ।

उन्मीलन्मिथुनानुरागगरिमोदारस्फुरन्माधुरी –
धारासारधुरीणदिव्यललितानङ्गोत्सवैः खेलतोः ।
राधामाधवयोः परं भवतु नश्चित्ते चिरार्तिस्पृशोः
कौमारे नवकेलिशिल्पलहरीशिक्षादिदीक्षारसः ॥६४॥

कैशोर के प्रथम मिलन के दर्शन की इच्छा –

युगल की कौमारकालीन बढ़ी हुई कामातुरता के विकास की कामना कर रहे हैं, जिसमें परस्पर बढ़ते हुए अनुराग का गाम्भीर्य उदार रूप से स्फुरित मधुर धाराओं की वर्षा से दिव्य और सुन्दर कामोत्सवों से क्रीड़ा करते हुए, दोनों एक-दूसरे के अङ्गों का स्पर्श कर रहे हैं, वह समर्पण युक्त लीलाओं का रस हमारे चित्त में स्थिर रहे ।

कदा वा खेलन्तौ व्रजनगरवीथीषु हृदयम्
हरन्तौ श्रीराधाव्रजपतिकुमारौ सुकृतिनः ।
अकस्मात् कौमारे प्रकटनवकैशोरविभवौ
प्रपश्यन् पूर्णः स्यां रहसि परिहासादिनिरतौ ॥६५॥

'ब्रज नवरस कुञ्ज-वीथी-क्रीड़ा' दर्शन –

ब्रज की गलियों में खेलते हुए, पुण्यात्माओं के चित्त को छीनते हुए, सहसा कुमारावस्था में ही जिनके नव-कैशोर का वैभव प्रकट हो गया है, एकान्त में हास-

परिहास में लगे हुए श्रीराधा और नन्दलाल के दर्शन करते हुए मैं कब कृतार्थ होऊँगी ?

(‘कौमारे’ का सम्बन्ध “प्रकट नव ....विभवौ” से है ।)

धम्मिल्लं ते नवपरिमलैरुल्लसत्फुल्लमल्ली –
मालं भालस्थलमपि लसत्सान्द्रसिन्दूरविन्दुम् ।
दीर्घापाङ्गच्छविमनुपमां चारुचन्द्रांशुहासम्
प्रेमोल्लासं तव तु कुचयोर्द्वन्द्वमन्तः स्मरामि ॥६६॥

‘श्रीराधा का कैशोर’ वर्णन –

(श्रीराधे !) आपकी नई मल्ली (बेला) मालाओं के सुगन्धित फूलों से बनी वेणी और ललाट पर लगे घने सिन्दूर से शोभित लाल बिन्दु, कान तक फैले हुए नेत्रों की बेजोड़ छवि , प्रेम से उल्लसित चाँदनी की तरह आपकी मधुर हँसी और दोनों श्री-स्तनों के रहस्य को मैं हृदय से स्मरण करती हूँ ।

लक्ष्मीकोटिविलक्ष्यलक्षणलसल्लीलाकिशोरीशतै –
राराध्यं व्रजमण्डलेतिमधुरं राधाभिधानं परम् ।
ज्योतिः किञ्चन सिञ्चदुज्वल रसप्राग्भावमाविर्भवद्
राधे चेतसि भूरिभाग्यविभवैः कस्याप्यहो जृम्भते ॥६७॥

तात्विक रूप वर्णन –

हे श्रीराधे ! करोड़ों लक्ष्मियों के लिए भी आश्चर्यजनक लक्षण वाली, सैकड़ों किशोरीगणों से ब्रज में आराध्य ‘श्रीराधा’ नामक मधुर गौर-ज्योति रूप, उज्ज्वल श्रृंगार रस के अंकुरित होते हुए प्रेम-भाव को सींचती हुई किसी अत्यन्त भाग्यशाली के चित्त में विस्तार से उल्लसित होती हैं ।

तज्जीयान् नवयौवनोदयमहालावण्यलीलामयम्
सान्द्रानन्दघनानुरागघटितश्रीमूर्तिसम्मोहनम् ।
वृन्दारण्यनिकुञ्जकेलिललितं काश्मीरगौरच्छवि
श्रीगोविन्द इव व्रजेन्द्रगृहिणीप्रेमैकपात्रं महः ॥६८॥

'रस-रहस्यमय ज्योति' की जय हो –

जो नव-यौवन के प्रकट होने के समय महान् लावण्य युक्त, सौन्दर्य लीला युक्त हैं । जो घनीभूत आनन्द और अनुराग से रचित मूर्ति वाले कृष्ण को मोहित कर लेती हैं । केसर के समान गोरी छवि वाली, जो श्रीधाम की निकुञ्ज-लीलाओं में अति ललित हैं एवं जो ब्रजेन्द्र (नन्द या वृषभानु) की गृहिणी (यशोदा या कीर्ति) को कृष्ण के ही समान प्रेमपात्री हैं, वह 'गौर-तेज' जय को प्राप्त हो रहा है ।

प्रेमानन्दरसैकवारिधिमहाकल्लोलमालाकुला
व्यालोलारुणलोचनाञ्चलचमत्कारेण सञ्चिन्वती ।
किञ्चित् केलिकलामहोत्सवमहो वृन्दाटवीमन्दिरे
नन्दत्यद्भुतकामवैभवमयी राधा जगन्मोहिनी ॥६९॥

श्रीराधा की जय हो –

प्रेम ही आनन्द रस है, उसके महान समुद्र की लहरों से बनी हुई चपल, अरुण कोर वाले नेत्रों के कटाक्ष से, क्रीड़ा की कला का महान उत्सव सींचती हुई, श्रीवृन्दावन के निकुञ्ज-मन्दिर में प्रेम वैभवमयी विश्वमोहिनी 'राधा' आनन्दित होकर विहार कर रही हैं ।

वृन्दारण्यनिकुञ्जसीमनि नवप्रेमानुभावभ्रमद्
भ्रूभङ्गीलवमोहितव्रजमणिर्भक्तैकचिन्तामणिः ।

सान्द्रानन्दरसामृतस्त्रवमणिः प्रोद्दामविद्युल्लता –
कोटिज्योतिरुदेति कापि रमणीचूडामणिर्मोहिनी ॥७०॥

रमणियों की चूड़ामणि 'राधा' –

जो वृन्दावन-निकुञ्ज की सीमा में, नवीन प्रेमानुभूति से चञ्चल भ्रू-भंगिमा के लेशमात्र से ब्रजमणि कृष्ण को मोहित करने वाली मणि हैं, जो भक्तों के लिए एकमात्र चिन्तामणि-स्वरूप हैं, जो घनीभूत आनन्दामृतरस को प्रकट करने वाली मणि हैं, जिनसे उत्कट करोड़ों विद्युत-लता उत्पन्न होती हैं, जो रमणियों की चूड़ामणि हैं; ऐसी अद्भुत मोहिनी शक्ति (श्रीराधा) रूप मणि प्रकट हो रही है ।

लीलापाङ्गतरङ्गितैरुदभवन्नेकैकशः कोटिशः
कन्दर्पाः पुरुदर्पटङ्कृतमहाकोदण्डविस्फारिणः।
तारुण्यप्रथमप्रवेशसमये यस्या महामाधुरी –
धारानन्तचमत्कृता भवतु नः श्रीराधिका स्वामिनी ॥७१॥

'श्रीराधा स्वामिनी' का स्वरूप –

यौवन के प्रथम-प्रवेश समय ही लीला से प्रेरित कटाक्ष रूपी विलासी लहरों से, गर्व भरे विशाल धनुषों को खींचने वाले करोड़ों काम एक-एक कर उत्पन्न होते रहते हैं, जो माधुर्यमय अनन्त धाराओं से चमत्कार पूर्ण रहती हैं; ऐसी 'राधिका' हमारी स्वामिनी हैं ।

यत्पादाम्बुरुहैक रेणु कणिकां मूर्ध्ना निधातुं न हि
प्रापुर्ब्रह्म शिवादयोप्यधिकृतिं गोप्येकभावाश्रया ।
सापि प्रेमसुधारसाम्बुधिनिधी राधापि साधारणी
भूता कालगतिक्रमेण बलिना हे दैव तुभ्यं नमः ॥७२॥

'राधा रूप' की महिमा –

जिनके चरणकमल की एक रेणु-कण को ब्रह्मा, शंकर आदि गोपी-भाव का आश्रय लेकर के भी नहीं प्राप्त कर पाये, वही प्रेमामृत रससागर की निधि 'श्रीराधा' बलवान काल-गति से साधारण-सी हो गई हैं; हे दैव ! आपको नमस्कार ।

दूरे स्निग्धपरम्परा विजयतां दूरे सुहृन्मण्डली
भृत्याः सन्तु विदूरतो व्रजपतेरन्यः प्रसङ्गः कुतः ।
यत्र श्रीवृषभानुजा कृतरतिः कुञ्जोदरे कामिना
द्वारस्था प्रियकिङ्करी परमहं श्रोष्यामि काञ्चिध्वनिम् ॥७३॥

शान्त-दास्य-सख्य-वात्सल्य से भी दुर्लभ 'सखीभाव' –

जहाँ कुञ्ज के आन्तरिक भाग में युगल की रति लीला होती रहती है, वहाँ कृष्ण के स्नेहीजन भी नहीं पहुँच पाते । सखावर्ग, दासवर्ग भी दूर रहते हैं, फिर अन्यों की उपस्थिति का कोई प्रश्न ही नहीं; जहाँ कुञ्ज के अन्तर्गत कामी श्रीकृष्ण के साथ 'श्रीराधा' रमण कर रही हैं, उनकी काञ्ची-ध्वनि को ('करधनी' के शब्द को) द्वार पर स्थित होकर 'प्रिय किङ्करी' बनकर (कब) सुनूँगी ?

गौराङ्गे मृदिमास्मिते मधुरिमा नेत्राञ्चलेद्राघिमा
वक्षोजे गरिमा तथैव तनिमा मध्ये गतौ मन्दिमा ।
श्रोण्यां च प्रथिमा भ्रुवोः कुटिलिमा बिम्बाधरे शोणिमा
श्रीराधे हृदि ते रसेन जडिमा ध्यानेऽस्तु मे गोचरः ॥७४॥

ध्यान में दर्शनानन्द –

गौर-अङ्गों में कोमलता, मुस्कान में मधुरता, नेत्र की कोरों में विशालता, स्तनों में गुरुता, कटिप्रान्त में क्षीणता (पतलापन), चाल में मंदता, नितम्बों में

स्थूलता, भौहों में कुटिलता, अधरबिम्बों में रक्तता (ललायी) एवं हृदय में रसावेश की स्तब्धता (जड़ता) मेरे ध्यान में प्रकट हो ।

प्रातः पीतपटं कदा व्यपनयाम्यन्यांशुकस्यार्पणात्
कुञ्जे विस्मृतकञ्चुकीमपि समानेतुं प्रधावामि वा ।
बध्नीयां कवरीं युनज्मि गलितां मुक्तावलीमञ्जये
नेत्रे नागरि रङ्ककैश्च पिदधाम्यङ्गव्रणं वा कदा ॥७५॥

सुरतान्त में सेवा की इच्छा –

हे चतुर शिरोमणि राधे ! कभी प्रातः आपने किसी का (श्याम का) शीघ्रता में पीताम्बर पहना होगा, उसके स्थान पर नीलाम्बर धारण कराऊँगी और शीघ्रता में भूली हुई कञ्चुकी को दौड़कर लाऊँगी, विहार में ढीला जूड़ा, उसे फिर से बाँधूंगी, टूटी हुई मोती की माला को पिरोऊँगी, नेत्रों में छूटा अञ्जन लगाकर के कस्तूरी-कुमकुम-मलय आदि के द्वारा नख के चिह्नों को कब ढकूँगी; ऐसा भाग्य कब होगा ?

यद् वृन्दावनमात्रगोचरमहो यन्न श्रुतीकं शिरो –
प्यारोढुं क्षमते न यच्छिवशुकादीनां तु यद् ध्यानगम् ।
यत् प्रेमामृतमाधुरीरसमयं यन्नित्यकैशोरकम्
तद् रूपं परिवेष्टुमेव नयनं लोलायमानं मम ॥७६॥

दर्शन-इच्छा की तीव्रता –

जो 'रूप' श्रीवृन्दावन मात्र में ही प्रत्यक्ष होता है और जिसे वेदों का शिरोभाग उपनिषद् आदि भी नहीं पा सकते, जो 'शिव, शुक आदि' को ध्यान में भी ग्राह्य नहीं है, जो प्रेमामृत की मधुरता के रस से भरा हुआ है, जो नित्य किशोर अवस्था से युक्त है; उस रूप को देखने के लिए मेरे नेत्र व्याकुल हो रहे हैं ।

धर्माद्यर्थचतुष्टयं विजयतां किं तद् वृथावार्तया
सैकान्तेश्वरभक्तियोगपदवी त्वारोपिता मूर्द्धनि ।
यो वृन्दावनसीम्नि कश्चन घनाश्चर्यः किशोरीमणिस्
तत्कैङ्कर्यरसामृताद् इह परं चित्ते न मे रोचते ॥७७॥

'किङ्करी-भाव' की महिमा –

'धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष' ये चारों पुरुषार्थ 'विजय' को प्राप्त हो रहे हैं, इनकी व्यर्थ-चर्चा से क्या लाभ ? ईश्वर की भक्तियोग पदवी को भी दूर से प्रणाम करते हैं अर्थात् उससे भी हमें क्या प्रयोजन ? हमारे चित्त को तो श्रीवृन्दावन की सीमा में विराजित वही घनी आश्चर्यरूप किशोरीमणि का कैङ्कर्य (दासी-भाव) रूप रसामृत के अतिरिक्त कुछ भी रोचक नहीं है ।

प्रेम्णः सन्मधुरोज्ज्वलस्य हृदयं श्रृङ्गारलीलाकला –
वैचित्रीपरमावधिर्भगवतः पूज्यैव कापीशता ।
ईशानी च शची महासुखतनुः शक्तिः स्वतन्त्रा परा
श्रीवृन्दावननाथपट्टमहिषी राधैव सेव्या मम ॥७८॥

इष्ट 'श्रीराधा' का परत्व वर्णन –

शुद्ध मधुर व उज्ज्वल प्रेम की हृदयरूपा हैं, श्रृंगार रस की लीला-कलाओं की विचित्रता की सर्वोच्च अवधि हैं, भगवान् कृष्ण की आराध्या व शासिका हैं; समस्त ऐश्वर्य शक्तियाँ पार्वती, इन्द्राणी और महासुख स्वरूपा की स्वतन्त्र सुखमय वपुधारिणी शक्ति हैं; वे श्रीवृन्दावन के नाथ की पटरानी 'श्रीराधा' ही मेरी आराध्या हैं ।

राधादास्यमपास्य यः प्रयतते गोविन्दसङ्गाशया
सोऽयं पूर्णसुधारुचेः परिचयं राकां विना काङ्क्षति ।

किं च श्याम रति प्रवाहलहरीबीजं न ये तां विदुः
ते प्राप्यापि महामृताम्बुधिमहो बिन्दुं परं प्राप्नुयुः ॥७९॥

श्रीराधिका की परात्परता –

'श्रीराधा' के कैङ्कर्य को छोड़कर जो गोविन्द के संग की चेष्टा करते हैं, वे बिना पूर्णिमा तिथि के पूर्णचन्द्र प्राप्त करना चाहते हैं। कृष्णप्रेम-प्रवाह की लहरों का बीज 'श्रीराधा' को न जानने से महान अमृत के सागर को पाकर भी एक बूँद ही पा सकेंगे।

कैशोराद्भुतमाधुरीभरधुरीणाङ्गच्छविं राधिकाम्
प्रेमोल्लासभराधिकां निरवधि ध्यायन्ति ये तद्धियः।
त्यक्ताः कर्मभिरात्मनैव भगवद्धर्मेप्यहो निर्ममाः
सर्वाश्चर्यगतिं गता रसमयीं तेभ्यो महद्भ्यो नमः ॥८०॥

अनन्य रसिकों को नमस्कार –

किशोरावस्था के विलक्षण माधुरी प्रवाह से जिनके सभी अङ्गों की छवि सर्वश्रेष्ठ हो रही है एवं जो उल्लास भरे प्रेम के प्रवाह के द्वारा सर्वोच्चता को प्राप्त हैं, ऐसी 'राधिका' को जो महापुरुष तन्मय चित्त से सदा ध्यान करते हैं, वे कर्मों को नहीं छोड़ते, कर्म ही उन्हें छोड़ देते हैं (स्वतः कर्मबन्धन कट जाते हैं) और सर्वश्रेष्ठ भगवद्-धर्मों की ममता से भी मुक्त होकर सभी आश्चर्यों से भरी हुई परम रसमयी गति को प्राप्त करते हैं, उनको बारम्बार नमस्कार।

लिखन्ति भुजमूलतो न खलु शङ्खचक्रादिकम्
विचित्रहरिमन्दिरं न रचयन्ति भालस्थले।
लसत्तुलसिमालिकां दधति कण्ठपीठे न वा
गुरोर्भजनविक्रमात् क इह ते महाबुद्धयः ॥८१॥

अनन्य रसिकों का स्वरूप –

श्रीगुरु द्वारा दिए गए भजन के पराक्रम से वे भुजाओं में शंख-चक्र आदि वैष्णव चिह्नों को नहीं लिखते हैं और न कभी ललाट पर विचित्र हरि-मन्दिर (वैष्णव-तिलक) रचते हैं, गले में तुलसी माला भी धारण करें या न करें (बाहरी लक्षणों से बेसुध होकर निरन्तर अन्तरंग रस अर्थात् विशुद्ध 'श्रीराधारस' में डूबे रहते हैं); ऐसे भजनी कितने हैं अर्थात् विरले ही हैं ।

कर्माणि श्रुतिबोधितानि नितरां कुर्वन्तु कुर्वन्तु मा
गूढाश्चर्यरसाः स्रगादिविषयान् गृह्णन्तु मुञ्चन्तु वा ।
कैर्वा भाव रहस्यपारगमतिः श्रीराधिकाप्रेयसः
किञ्चिज्ज्ञैरनुयुज्यतां बहिरहो भ्राम्यद्भिरन्यैरपि ॥८२॥

रसिकजनों की स्थिति –

श्रीराधाकान्त के गूढ और आश्चर्यमय उज्ज्वल भाव के आश्रित रसिकजन वेद-विहित कर्मकाण्ड का अनुष्ठान करें या न करें, माला-चन्दन आदि विलास के साधन ग्रहण करें या न करें । हानि-लाभ से रहित वे रसिक, बहिर्मुख सकाम पुरुषों के साथ क्या कभी मिल सकते हैं अर्थात् उनसे अप्रभावित ही रहते हैं ।

अलं विषयवार्त्तया नरककोटिबीभत्सया
वृथा श्रुतिकथाश्रमो बत बिभेमि कैवल्यतः ।
परेशभजनोन्मदा यदि शुकादयः किं ततः
परं तु मम राधिकापदरसे मनो मज्जतु ॥८३॥

'रसिकों' की मनः स्थिति –

विषय तो दूर विषय की चर्चा भी मत करो क्योंकि वह करोड़ों नरकों से भी घृणित है । अहो ! श्रुति-कथा भी व्यर्थ है क्योंकि मुझे तो मोक्ष से भी भय लगता

है । परम पुरुष भगवान् के भजन में यदि शुकदेव आदि उन्मत्त हैं तो उनसे हमें क्या, हमारा मन तो 'श्रीराधारानी के चरण-रस' में ही डूबा रहे (यही अभिलाषा है) ।

तत् सौन्दर्यं स च नववयोयौवनश्रीप्रवेशः
सा दृग्भङ्गी स च रसघनाश्चर्यवक्षोजकुम्भः ।
सोऽयं बिम्बाधरमधुरिमा तत् स्मितं सा च वाणी
सेयं लीलागतिरपि न विस्मर्यते राधिकायाः ॥८४॥

न भूलने वाला स्वरूप –

'स्वामिनी' का वह सौन्दर्य, नवीन यौवन की शोभा में प्रवेश, वे कटाक्ष, घने रस आश्चर्य से भरे हुए वे दोनों स्तन-कलश, अधरों की वह बिम्बाफल माधुरी, वह मीठी मुस्कान, वह रसीली वाणी, वह मंद-मंद चलना; ये सब भूलता ही नहीं ।

यल्लक्ष्मीशुकनारदादिपरमाश्चर्यानुरागोत्सवैः
प्राप्तं त्वत्कृपयैव हि व्रजभृतां तत्तत्किशोरीगणैः ।
तत्कैङ्कर्यमनुक्षणाद्भुतरसं प्राप्तुं धृताशे मयि
श्रीराधे नवकुञ्जनागरि कृपादृष्टिं कदा दास्यसि ॥८५॥

कृपादृष्टि की याचना –

हे चतुर शिरोमणि नव-कुञ्ज की नायिका ! मैं उस दास्य-प्राप्ति की आशा धारण किए हूँ, जिससे प्रतिक्षण अद्भुत रस की प्राप्ति होती है और जिसे ब्रजवासियों की किशोरीगणों ने तुम्हारी कृपा से ही उल्लासपूर्ण प्रेम से प्राप्त किया । जो लक्ष्मी, शुक, नारद आदि के लिए परमाश्चर्यमय, पूर्णानुराग के उत्सवों से भरी हुई हैं; आप ! कब कृपादृष्टि करेंगी ?

लब्ध्वा दास्यं तदतिकृपया मोहनस्वादितेन
सौन्दर्यश्रीपदकमलयोर्लालनैः स्वापितायाः ।
श्रीराधायाः मधुरमधुरोच्छिष्टपीयूषसारम्
भोजं भोजं नवनवरसानन्दमग्ना कदा स्याम् ॥८६॥

श्रीजी के उच्छिष्ट प्रसाद की इच्छा –

श्रीकृष्ण के द्वारा जिनके प्रेमरस का आस्वादन किया गया है, उन सर्वेश्वरी की असीम अनुकम्पा से उनके दास्यभाव को प्राप्तकर 'सौन्दर्य के सर्वस्व चरणकमलों को दबाकर जिनको सुलाया गया है, उन श्रीराधा के' मधुरातिमधुर अमृतसार को पुनः पुनः पीकर अति नवीन रसानन्द में मैं कब मग्न होऊँगी ?

यदि स्नेहाद् राधे दिशसि रतिलाम्पट्यपदवीम्
गतं मे स्वप्रेष्ठं तदपि मम निष्ठां शृणु यथा ।
कटाक्षैरालोके स्मितसहचरैर्जातपुलकम्
समाश्लिष्याम्युच्चैरथ च रसये त्वत्पदरसम् ॥८७॥

निष्ठा का स्वरूप –

हे श्रीराधे ! यदि आप कभी स्नेह से रति-लम्पटता की स्थिति पर पहुँचे हुए अपने कान्त को दान में मुझे देंगी, तब मेरी निष्ठा-स्थिति को सुनिये – मैं मुस्कुराती हुई अपने कटाक्षों से प्रियतम को देखूँगी और इतने से ही उनके शरीर में रोमाञ्च हो जाएगा; उसके बाद उनका गाढ़ आलिङ्गन भी करूँगी, जिससे उनकी प्रेम-विह्वलता बढ़ेगी किन्तु यह सब होने पर भी मुझे आपके चरणकमलों के ही रस का अनुभव होगा ।

कृष्णः पक्षो नवकुवलयं कृष्णसारस्तमालो
नीलाम्भोदस्तव रुचिपदं नामरूपैश्च कृष्णा ।

कृष्णे कस्मात् तव विमुखता मोहनश्याममूर्त्ता –
वित्युक्त्वा त्वां प्रहसितमुखीं किन्नु पश्यामि राधे ॥८८॥

रसीली व्यंग्य-वार्ता –

हे श्रीराधे ! कृष्ण पक्ष अथवा कृष्ण पक्षीय नूतन नीलकमल, कृष्णसार मृग, श्याम-तमाल, सजल नीला बादल, कृष्ण रूप वाली कृष्णा (यमुना) - ये सब आपको प्रिय हैं, फिर किस कारण से आपने श्याममूर्ति कृष्ण से प्रतिकूल भाव धारण किया है; ऐसा कहकर आपको मैं हँसती हुई (मानरहित) कब देखूँगी ?

लीलापाङ्गतरङ्गितैरिव दिशो नीलोत्पलश्यामला
दोलायत्कनकाद्रिमण्डलमिव व्योम स्तनैस्तन्वतीम् ।
उत्फुल्लस्थलपङ्कजामिव भुवं रासे पदन्यासतः
श्रीराधामनुधावतीं व्रजकिशोरीणां घटां भावये ॥८९॥

श्रीराधा अनुगामिनी 'किशोरीगणों' का स्वरूप –

जिनके विलासपूर्ण कटाक्ष की लहरों से समस्त दिशाएँ नीलकमल की श्यामता प्राप्त करती हैं, जिनके स्तनमण्डल आकाश में हिलते हुए स्वर्ण-पर्वत का विस्तार करते हैं; जिनके चरणों की गति से 'रासमण्डल की पृथ्वी' खिले हुए स्थल-कमल (गुलाब) से शोभित हो जाती है; श्रीराधा की ऐसी अनुगामिनी 'किशोरीगणों' की मैं भावना करती हूँ ।

दृशौ त्वयि रसाम्बुधौ मधुरमीनवद् भ्राम्यतः
स्तनौ त्वयि सुधासरस्यहह चक्रवाकाविव ।
मुखं सुरतरङ्गिणि त्वयि विकासि हेमाम्बुजम्
मिलन्तु मयि राधिके तव कृपातरङ्गच्छटाः ॥९०॥

कृपा-कोर की याचना –

हे श्रीराधे ! आपका सम्पूर्ण वपु ही एक विस्तृत रस-समुद्र है, उस रससागर में आपके दोनों नेत्र ही चञ्चल मछलियों की भाँति चलते-फिरते रहते हैं । 'श्रीराधा' रूप अमृत-नदी में विहार करने वाले चकवा-चकई की भाँति आपके दोनों स्तन हैं और हे सुरनदी श्रीराधे ! आपका 'गौर-मुख' ही विकसित स्वर्ण-कमल है । हे स्वामिनी ! आपकी कृपा-लहरों की छटा (किरणें) मुझे प्राप्त हों ।

(इस पद्य के द्वितीय पाद में **श्रीराधाजी** को ही 'अमृत-सरोवर' एवं तृतीय पाद में **श्रीराधाजी** को ही 'देवनदी गंगा' कहा है ।)

कान्ताढ्याश्चर्यकान्ता कुलमणिकमला कोटिकाम्यैकपादा –
म्भोजभ्राजन्नखेन्दुच्छविलवविभवा काप्यगम्या किशोरी ।
उन्मर्यादप्रवृद्धप्रणयरसमहाम्भोधिगम्भीरलीला –
माधुर्योज्जृम्भिताङ्गी मयि किमपि कृपारङ्गमङ्गीकरोतु ॥९१॥

कृपा-प्राप्ति की प्रार्थना –

अपने प्रियतम से युक्त करोड़ों कान्ताओं की जो मणिरूपा हैं तथा करोड़ों कमलाओं का इच्छित वैभव जिनके शोभित पदकमल नखचन्द्रमणि का प्रत्येक कण है; जिनका श्रीअङ्ग अति अमर्यादित बढ़ते हुए प्रेमरूपी महासमुद्र की गम्भीर लीला-माधुरी से उल्लसित है; ऐसी सभी से अगम्य 'किशोरी' अपने कृपा-रस से मुझे रञ्जित कर स्वीकार करें ।

कलिन्दगिरिनन्दिनीपुलिनमालतीमन्दिरे
प्रविष्टवनमालिना ललितकेलिलोलीकृते ।
प्रतिक्षणचमत्कृताद्भुतरसैकलीलानिधे
निधेहि मयि राधिके निजकृपातरङ्गच्छटाम् ॥९२॥

कृपा-कोर की प्रार्थना –

कलिन्दगिरि से निकलती हुई श्रीयमुना तट पर स्थित मालतीभवन में प्रवेश कर, वनमाली कृष्ण ने जिन 'श्रीराधा' को सुन्दर क्रीड़ाओं से चञ्चल कर दिया है; इसी से प्रतिपल जिनकी रसमयी लीला का समुद्र चमत्कृत और अद्भुत हो गया है; ऐसी 'श्रीराधा' कृपामयी तरंगों का मुझ पर विस्तार करें ।

यस्यास्ते बत किङ्करीषु बहुशश्चाटूनि वृन्दाटवी –
कन्दर्पः कुरुते तवैव किमपि प्रेप्सुः प्रसादोत्सवम् ।
सान्द्रानन्दघनानुरागलहरीनिस्यन्दपादाम्बुज –
द्वन्द्वे श्रीवृषभानुनन्दिनि सदा वन्दे तव श्रीपदम् ॥९३॥

श्रीजी का स्वरूप और प्रणाम –

श्रीमद्वृन्दावन के कन्दर्प श्रीकृष्ण 'जिन (श्रीजी) की कृपा की प्राप्ति भी उत्सव है' उस कृपा को पाने के लिए उनकी किङ्करियों की सहर्ष चाटुकारिता करते रहते हैं । 'आपके जिन चरणकमलों से घनीभूत आनन्द और सघन अनुराग की लहरें बहती रहती हैं' हे वृषभानुलाड़िली ! मैं उन्हीं श्रीचरणों की वन्दना करती हूँ ।

यज्जापः सकृद् एव गोकुलपतेराकर्षकस्तत्क्षणाद्
यत्र प्रेमवतां समस्तपुरुषार्थेषु स्फुरेत् तुच्छता ।
यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः
श्रीकृष्णोऽपि तदद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम् ॥९४॥

'राधा-नाम' माहात्म्य –

'राधा' ये दो अक्षर मेरे हृदय में स्फुरित हों, जिसका एकबार का उच्चारण ही गोकुलपति कृष्ण को आकर्षित करता है; जिससे 'धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष' चतुष्टय

पुरुषार्थ भी तुच्छ लगते हैं, जिस नाम से अंकित मन्त्रराज का जाप स्वयं श्रीकृष्ण भी तत्परतापूर्वक करते हैं ।

कालिन्दीतटकुञ्जरमन्दिरगतो योगीन्द्रवद् यत्पद –
ज्योतिर्ध्यानपरः सदा जपति यां प्रेमाश्रुपूर्णो हरिः ।
केनाप्यद्भुतमुल्लसद्रतिरसानन्देन सम्मोहितः
सा राधेति सदा हृदि स्फुरतु मे विद्या परा द्व्यक्षरा ॥९५॥

'राधा-नाम' की महिमा –

जिसे स्वयं श्रीकृष्ण भी योगीन्द्रों के समान राधाचरण-ज्योति में ध्यान लगाकर, भरे हुए नेत्र एवं गद्गद वाणी से यमुना तट पर विद्यमान कुञ्जों के मंदिर में जप किया करते हैं; वही अवर्णनीय विलासमय रति-रसानन्द से मोहित, जप्य दो अक्षरों की पराविद्या 'राधा' मेरे हृदय में स्फुरित रहें ।

देवानामथ भक्तमुक्तसुहृदामत्यन्तदूरं च यत्
प्रेमानन्दरसं महासुखकरं चोच्चारितं प्रेमतः ।
प्रेम्णाकर्णयते जपत्यथ मुदा गायत्यथालिष्वयम्
जल्पत्यश्रुमुखो हरिस्तदमृतं राधेति मे जीवनम् ॥९६॥

'राधा-नाम' का माहात्म्य –

जो देवगणों, भक्तों, मुक्तों और स्वयं श्रीकृष्ण के सुहृद वर्गों से अप्राप्य है । जो प्रेमानन्द रसरूप है, जिसका उच्चारण महासुख देने वाला है; जिसे स्वयं श्रीकृष्ण भी सप्रेम सुनते हैं, स्वयं जप करते हैं, सखीगणों के मध्य में प्रेमपूर्वक गाते हैं, जप में प्रेमाश्रु से मुख भर जाता है और बारम्बार उच्चारण करते हैं; वही 'श्रीराधानामामृत' मेरा जीवन है ।

या वाराधयति प्रियं व्रजमणिं प्रौढ़ानुरागोत्सवैः
संसिध्यन्ति यदाश्रयेण हि परं गोविन्दसख्युत्सुकाः ।
यत् सिद्धिः परमापदैकरसवत्याराधनात्ते नु सा
श्रीराधा श्रुतिमौलिशेखरलता नाम्नी मम प्रीयताम् ॥९७॥

श्रीजी की प्रार्थना –

जिस प्रकार 'श्रीकृष्ण' श्रीराधा का आराधन करते हैं, उसी प्रकार 'श्रीराधा' प्रकृष्ट अनुराग के उल्लास से भरी हुई प्रियतम का आराधन करती हैं । गोविन्द के साथ सखीभाव पाने के उत्सुक जन भी जिनके आश्रय से ही इष्ट-सिद्धि प्राप्त करते हैं, जिनकी आराधना से परमपद रूपा रस-सिद्धि प्राप्त होती है, वही 'श्रीराधा' नाम वाली श्रुतियों के मस्तक पर शोभित लता मुझ पर प्रसन्न हो जाए ।

गात्रे कोटितडिच्छवि प्रविततानन्दच्छवि श्रीमुखे
बिम्बौष्ठे नवविद्रुमच्छवि करे सत्पल्लवैकच्छविः ।
हेमाम्भोरुहकुड्मलच्छवि कुचद्वन्द्वेऽरविन्देक्षणम्
वन्दे तन्नवकुञ्जकेलिमधुरं राधाभिधानं महः ॥९८॥

श्रीजी का स्वरूप वर्णन –

जिनके श्री-अङ्ग में करोड़ों विद्युत-छवि, श्रीमुख में विस्तृत आनन्द की छवि, बिम्बोष्ठ में नए विद्रुम की छवि तथा श्री-करों में नवीन पल्लवों की छवि , जिनके स्तनों में स्वर्णकमल-कलियों की छवि, नेत्रों में कमल-छवि, नवीन कुञ्जों में क्रीड़ा से मधुर हुई 'राधा-नाम ज्योति' की मैं वन्दना करती हूँ ।

मुक्तापङ्क्तिप्रतिमदशना चारुबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा नवनवरसावर्त्तगम्भीरनाभिः ।

पीनश्रोणिस्तरुणिमसमुन्मेषलावण्यसिन्धुर् –
वैदग्धीनां किमपि हृदयं नागरी पातु राधा ॥९९॥

अद्भुत वाञ्छा –

जिनकी सुन्दर दन्तावली मोतियों की पंक्ति के समान है, जिनका अधरोष्ठ बिम्बाफल के समान है, कटि अत्यन्त पतली है, नये-नये रसों के भँवर की तरह नाभि गम्भीर है, मोटे नितम्ब वाली, प्रस्फुटित तरुणाई रूप-लावण्य की समुद्र बनी हुई चतुर नायिकाओं की कोई शिरोमणि 'श्रीराधा' मेरी रक्षा करें ।

स्निग्धाकुञ्चितनीलकेशि विदलद्बिम्बोष्ठिचन्द्रानने
खेलत्खञ्जनगञ्जनाक्षि रुचिमन्नासाग्रमुक्ताफले ।
पीनश्रोणि तनूदरि स्तनतटीवृत्तच्छटात्यद्भुते
राधे श्रीभुज वल्लिचारुवलये स्वं रूपमाविष्कुरु ॥१००॥

रूप-दर्शन की इच्छा –

हे चिकने काले घुँघराले केश वाली ! हे पके हुए बिम्बाधर अधरोष्ठ वाली ! हे चन्द्रमुखी ! हे चञ्चल खञ्जन का मर्दन करने वाले नेत्र वाली ! हे नासाग्र भाग में शोभित मुक्ताफल वाली ! हे पृथु नितम्ब वाली ! हे पतली कमर वाली ! हे स्तनतटों की अद्भुत गोलाई की छटा वाली ! हे भुजलताओं में सुन्दर कङ्कण वाली ! आप अपने स्वरूप को मेरे सामने प्रकट करें ।

लज्जान्तःपटमारचय्य रचितस्मायप्रसूनाञ्जलौ
राधाङ्गे नवरङ्गधाम्नि ललितप्रस्तावने यौवने ।
श्रोणीहेमवरासने स्मरनृपेणाध्यासिते मोहनम्
लीलापाङ्गविचित्रताण्डवकलापाण्डित्यमुन्मीलति ॥१०१॥

नाटकीय झाँकी –

लज्जा की यवनिका (पर्दा) डालकर, मुस्कान की पुष्पाञ्जलि बनाकर श्रीजी के अङ्गों में यौवन के लालित्य की प्रस्तावना की गई, जिसमें नृपति कन्दर्प, नितम्ब रूपी श्रेष्ठ सिंहासन पर अधिष्ठित होने पर नव-रङ्गभूमि रूप 'श्रीराधा' के अङ्ग में लीलापूर्ण कटाक्षों का विचित्र ताण्डव 'कला-कौशल' प्रकाशित हो रहा है ।

सा लावण्यचमत्कृतिर्नववयो रूपं च तन्मोहनम्
तत्तत्केलिकलाविलासलहरीचातुर्यमाश्चर्यभूः ।
नो किञ्चित् कृतमेव यत्र न नुतिर्नागो न वा सम्भ्रमो –
राधामाधवयोः स कोऽपि सहजः प्रेमोत्सवः पातु वः ॥ १०२ ॥

रक्षा की कामना –

जिसमें लावण्य का चमत्कार व नवीन अवस्था के रूप की मोहकता है, अनन्त केलि-कलाओं का विलास अति मनोरम रूप से तरङ्गित हो रहा है, समस्त आश्चर्यों की उस भूमि में न कोई बनावट है, न स्तुति है, न अपराध है, न आदर है; श्रीराधामाधव का ऐसा कोई अनिर्वचनीय, सहज प्रेमोत्सव तुम्हारी (रसिक वृन्द की) रक्षा करे ।

येषां प्रेक्षां वितरति नवोदारगाढानुरागान्
मेघश्यामो मधुरमधुरानन्दमूर्तिर्मुकुन्दः ।
वृन्दाटव्यां सुमहिमचमत्कारकारीण्यहो किम्
तानि प्रेक्षेऽद्भुतरसनिधानानि राधापदानि ॥ १०३ ॥

श्रीपदयुगल की दर्शन-लालसा –

जिन चरणों के दर्शन की इच्छा का दान, उदार और गाढ़ अनुराग से स्वयं मधुरातिमधुर आनन्द की मूर्ति घनश्याम कृष्ण भी किया करते हैं । वृन्दावन में

अत्यन्त महिमाशाली चमत्कार से युक्त, अद्भुत रस के जो निधान हैं, उन 'श्रीराधाचरणों' का मैं कब दर्शन करूँगी ?

बलान् नीत्वा तल्पे किमपि परिरभ्याधरसुधाम्
निपीय प्रोल्लिख्य प्रखरनखरेण स्तनभरम् ।
ततो नीवीं न्यस्ते रसिकमणिना त्वत्करधृते
कदा कुञ्जच्छिद्रे भवतु मम राधेनुनयनम् ॥१०४॥

केलि-दर्शन की इच्छा –

हे श्रीराधे ! रसिकशेखर श्याम ने आपको बलपूर्वक केलि शय्या पर ले जाकर अनिर्वचनीय प्रकार से परिरम्भण करके आपके अधर-सुधा का पान किया, अपने प्रखर नखों से आपके स्तनमण्डल को रेखांकित किया, उसके बाद आपके दोनों करकमलों को पकड़कर नीवी-बंधन को हटा दिया; यह सब मैं निकुञ्जभवन के छिद्रों से कब देखूँगी ?

करं ते पत्रालिं किमपि कुचयोः कर्त्तुमुचितम्
पदं ते कुञ्जेषु प्रियमभिसरन्त्या अभिसृतौ ।
दृशौ कुञ्जच्छिद्रैस्तव निभृतकेलिं कलयितुम्
यदा वीक्षे राधे तदपि भविता किं शुभदिनम् ॥१०५॥

श्रृंगार करने की तीव्र इच्छा –

हे श्रीराधे ! वह शुभ दिन मुझे कब मिलेगा, जब मैं आपके श्री-स्तनों पर अनुपम पत्रावली बनाने के योग्य अपने हाथों को और कुञ्जों में श्याम के प्रति अभिसार करने वाली आपका अनुसरण करने योग्य अपने पैरों को तथा कुञ्ज-छिद्रों से आपकी एकान्त केलि-दर्शन करने वाले अपने नेत्रों को कृतकृत्य समझूँगी ?

रहोगोष्ठीं श्रोतुं तव निजविटेन्द्रेण ललिताम्
करे धृत्वा त्वां वा नवरमणतल्पे घटयितुम् ।
रतामर्दस्त्रस्तं कचभरमथो संयमयितुम्
विदध्याः श्रीराधे मम किमधिकारोत्सवरसम् ॥ १०६ ॥

अभिलाषा –

हे श्रीराधे ! अति लम्पट अपने प्यारे के साथ आपके मधुर वार्तालाप सुनने का, आपका हाथ पकड़ नई रमण-शय्या तक पहुँचाने का और क्रीड़ा में सम्मर्द से खुले हुए केश-पाश को संयत करने का अधिकारोत्सव-रस मुझे कब प्रदान करेंगी ?

वृन्दाटव्यां नवनवरसानन्दपुञ्जे निकुञ्जे
गुञ्जद्भृङ्गीकुलमुखरिते मञ्जुमञ्जुप्रहासैः ।
अन्योन्यक्षेपणनिचयनप्राप्तसङ्गोपनाद्यैः
क्रीडज्जीयाद् रसिकमिथुनं क्लृप्तकेलीकदम्बम् ॥ १०७॥

'विशुद्ध निकुञ्ज-केलि' दर्शन –

श्रीवृन्दावन स्थित अत्यन्त रसानन्द-समूह का जो निकुञ्ज है, जिसमें गुञ्जनपरायण भृंगीकुल गुञ्जार कर रहे हैं; वहाँ मधुर परिहासपूर्वक कन्दुक (गेंद) फेंकना, पकड़ना और उसे छिपा लेना; इन क्रीड़ाओं में लगे हुए क्रीड़ा-समूहों से सज्जित 'रसिक युगल' जय को प्राप्त हो रहे हैं ।

रूपं शारदचन्द्रकोटिवदने धम्मिल्लमल्लीस्रजाम्
आमोदैर्विकलीकृतालिपटले राधे कदा तेऽद्भुतम् ।
ग्रैवेयोज्ज्वलकम्बुकण्ठि मृदुदोर्वल्लीचलत्कङ्कणे
वीक्षे पट्टदुकूलवासिनि रणन्मञ्जीरपादाम्बुजे ॥ १०८॥

'दर्शन' की इच्छा –

हे शारदीय करोड़ों पूर्णचन्द्रमुखवाली ! हे केशपाशों में गुथी हुई मल्ली-मालाओं के सुगन्ध द्वारा भ्रमर-समूहों को व्याकुल करने वाली ! हे कण्ठ आभूषण से उज्ज्वल शंखवत् कण्ठवाली ! हे कोमल भुजलताओं में चञ्चल कङ्कण वाली ! हे रेशमी दुपट्टा धारण करने वाली ! हे बजते नूपुरों से युक्त चरणकमल वाली ! कब आपके इस 'अद्भुत रूप' का दर्शन होगा ?

इतो भयमितस्त्रपाकुलमितो यशः श्रीरितो
हिनस्त्यखिलश्रृङ्खलामपि सखीनिवासस्त्वया ।
सगद्गदमुदीरितं सुबहुमोहनाकाङ्क्षया
कथं कथमयीश्वरि प्रहसितैः कदा म्रेड्यसे ॥१०९॥

सुन्दर मनोरथ –

"सखियों के मध्य में आपकी तीव्र आकांक्षा से 'एक ओर भय' दूसरी ओर लज्जा, इधर कुल 'उधर यश और श्री'; समस्त श्रृंखलाओं को आपके कारण नष्ट कर दिया ।" मेरे इन गद्गद वचनों को सुनकर आप 'कैसे-कैसे' कहकर कब हँसती हुई पूछेंगी ? ऐसा कब होगा ?

श्यामे चाटुरुतानि कुर्वति सहालापान् प्रणेत्री मया
गृह्णाने च दुकूलपल्लवमहो हुङ्कृत्य मां द्रक्ष्यसि ।
बिभ्राणे भुजवल्लिमुल्लसितया रोमस्त्रजालङ्कृताम्
दृष्ट्वा त्वां रसलीनमूर्तिमथ किं पश्यामि हास्यं ततः ॥११०॥

इच्छा-पूर्ति –

हे प्रेमरूपे ! श्यामसुन्दर आपकी चाटुकारी करें, उस समय आप मुझसे वार्तालाप करें और जब प्रियतम आपके दुपट्टे के छोर को पकड़ें तब आप हुंकार करते

हुए मुझे ही रोषपूर्वक देखेंगी । जब प्यारे आपकी भुजलता को पकड़ लेंगे तब आप उल्लास से, रोमाञ्च से शोभित हो जाएँगी । आपकी ऐसी रसमयी छवि और हास्य को मैं कब देखूँगी ?

अहो रसिकशेखरः स्फुरति कोपि वृन्दावने
निकुञ्जनवनागरीकुचकिशोरकेलिप्रियः ।
करोतु स कृपां सखीप्रकटपूर्णनत्युत्सवो
निजप्रियतमापदे रसमये ददातु स्थितिम् ॥ १११ ॥

लक्ष्य की अभिलाषा –

अहो ! कोई रसिक-चूडामणि वृन्दावन में स्फुरित हो रहे हैं, जिन्हें नई निकुञ्जों में नई नागरी के स्तनों के साथ क्रीड़ा प्रिय है और जो सखियों के सामने ही पूर्ण विनय में संकोच को छोड़कर आनन्द प्राप्त करते हैं; वे मुझ पर कृपा करें और अपनी प्रिया 'श्रीराधा के रसमय चरणकमलों' में मुझे अखण्ड-स्थिति प्रदान करें ।

विचित्रवरभूषणोज्ज्वलदुकूलसत्कञ्चुकैः
सखीभिरिति भूषिता तिलकगन्धमाल्यैरपि ।
स्वयं च सकलाकलासु कुशलीकृता नः कदा
सुरासमधुरोत्सवे किमपि वेशयेत् स्वामिनी ॥ ११२ ॥

'रास-प्रवेश' की इच्छा –

सखीगणों द्वारा विचित्र एवं श्रेष्ठ आभूषण, उज्ज्वल दुकूल, सुन्दर कञ्चुकी के द्वारा, तिलक एवं सुगन्धित द्रव्य मालाओं से भलीभाँति सुसज्जित (या अलङ्कृत) की गई हैं और जिन्होंने स्वयं हमें समस्त विद्याओं व कलाओं में पारंगत किया है; ऐसी 'स्वामिनी श्रीराधा' हमें कब मधुर उत्सव रूपी रास में प्रवेश देंगी ?

कदा सुमणिकिङ्किणीवलयनूपुरप्रोल्लसन्
महामधुरमण्डलाद्भुतविलासरासोत्सवे ।
अपि प्रणयिनो बृहद्भुजगृहीतकण्ठ्यो वयम्
परं निजरसेश्वरीचरणलक्ष्म वीक्षामहे ॥११३॥

सदा श्रीचरण-दर्शन ही लक्ष्य रहे –

कब 'मणिजटित किङ्किणी, वलय व नूपुर से शोभित अतिशय मधुर रासमण्डल के अद्भुत उत्सव में प्रियतम द्वारा दीर्घ भुजा से हमारी गलबैंया देने पर भी' मैं केवल समस्त रसों की ईश्वरी 'श्रीराधा के चरणचिह्नों' को ही देखूँगी ?

यद् गोविन्दकथासुधारसह्रदे चेतो मया जृम्भितम्
यद् वा तद्गुणकीर्त्तनार्चनविभूषाद्यैर्दिनं प्रापितम् ।
यद् यत् प्रीतिरकारि तत्प्रियजनेष्वात्यन्तिकी तेन मे
गोपेन्द्रात्मजजीवनप्रणयिनी श्रीराधिका तुष्यतु ॥११४॥

साधक-जीवन का लक्ष्य –

'श्रीगोविन्द के कथामृत रूपी रस सरोवर' में जो भी मैंने चित्त डुबाया है अथवा उनके गुण-कीर्तन, चरणार्चन, भूषण आदि से शोभित करने में दिन लगाए हैं अथवा उनके प्रियजनों में आत्यान्तिकी-प्रीति की है; उन सबके फलस्वरूप गोपेन्द्रनन्दन कृष्ण की जीवन स्वामिनी **श्रीराधा** मुझ पर प्रसन्न हों ।

रहो दास्यं तस्याः किमपि वृषभानोर्व्रजवरी –
यसः पुत्र्याः पूर्णप्रणयरसमूर्तेर्यदि लभे ।
तदा नः किं धर्मैः किमु सुरगणैः किं च विधिना
किमीशेन श्यामप्रियमिलनयत्नैरपि च किम् ॥११५॥

सर्वोच्च प्राप्ति –

यदि वृषभानुजी की दुलारी पुत्री 'पूर्णरसप्रेम-मूर्ति' का एकान्त-दास्य हमें प्राप्त हो जाए; फिर हमें धर्म से क्या, देवगणों से क्या, ब्रह्मा और शंकर से क्या; अरे ! कृष्ण के प्रिय-मिलन के प्रयत्न से भी क्या लाभ ?

चन्द्रास्ये हरिणाक्षि देवि सुनसे शोणाधरे सुस्मिते
चिल्लक्ष्मीभुजवल्लि कम्बुरुचिरग्रीवे गिरीन्द्रस्तनि ।
भञ्जन्मध्यबृहन्नितम्बकदलीखण्डोरुपादाम्बुज –
प्रोन्मीलन्नखचन्द्रमण्डलि कदा राधे मयाराध्यसे ॥११६॥

'आराधना' की तीव्र इच्छा –

हे चन्द्रमुखी ! हे मृगलोचनी ! हे देवी ! हे सुन्दर नासिका वाली ! अरुणोष्ठ व सुमधुर मुस्कान वाली ! चिन्मय शोभा सम्पत्ति युक्त भुजलता वाली ! शंख के समान सुन्दर ग्रीवा वाली ! स्वर्ण पर्वतवत् स्तनमण्डल वाली ! हे पतली कमर वाली ! हे विशाल नितम्ब वाली ! हे कदलीखण्ड के समान जङ्घा वाली ! हे कमल के समान चरणों वाली ! हे चमकते हुए नखचन्द्रमण्डल से युक्त शोभा वाली ! आप कब मेरी आराधना स्वीकार करेंगी ?

राधापादसरोजभक्तिमचलामुद्वीक्ष्य निष्कैतवाम्
प्रीतः स्वं भजतोऽपि निर्भरमहाप्रेम्णाधिकं सर्वशः ।
आलिङ्गत्यथ चुम्बति स्ववदनात् ताम्बूलमास्येऽर्पयेत्
कण्ठे स्वां वनमालिकामपि मम न्यस्येत् कदा मोहनः ॥११७॥

निष्कपट सेवा और उसका फल –

श्रीराधा के चरणकमलों में मेरी अचल और निष्कपट भक्ति देखकर 'मोहनलाल' अतिशय महाप्रेमपूर्वक सर्वात्मभाव से अपने भजन करने वालों से भी अधिक प्रसन्न

होकर आलिङ्गन चुम्बन करते हैं, अपने मुख का पान-बीड़ा मुख में देते हैं और उस राधाभक्त को अपनी वनमाला पहना देते हैं; मुझ पर ऐसी कृपा कब होगी ?

लावण्यं परमाद्भुतं रतिकलाचातुर्यमत्यद्भुतम्
कान्तिः कापि महाद्भुता वरतनोर्लीलागतिश्चाद्भुता ।
दृग्भङ्गी पुनरद्भुताद्भुततमा यस्याः स्मितं चाद्भुतम्
सा राधाद्भुतमूर्तिरद्भुतरसं दास्यं कदा दास्यति ॥ ११८॥

'अद्भुत दास्य' का दान –

जिनका लावण्य परम अद्भुत है, रतिकला की चतुरता अति अद्भुत है, श्रेष्ठ वपु वाली की कान्ति भी महान अद्भुत है, जिनकी लीलापूर्ण गति भी अद्भुत है, जिनके नेत्रों की मरोड़ अद्भुत से अद्भुत्तम है, जिनकी मुस्कान भी अद्भुत है; वे अद्भुत मूर्ति 'श्रीराधा' रसस्वरूप अपना अद्भुत दास्य मुझे कब देंगी ?

भ्रमद्भ्रूकुटिसुन्दरं स्फुरितचारुबिम्बाधरम्
ग्रहे मधुरहुङ्कृतं प्रणयकेलिकोपाकुलम् ।
महारसिकमौलिना सभयकौतुकं वीक्षितम्
स्मरामि तव राधिके रतिकलासुखं श्रीमुखम् ॥ ११९॥

'श्रीराधामुख-शोभा' स्मरण –

हे श्रीराधे ! मैं आपके रतिकला-सुख से भरे हुए 'श्रीमुख' का स्मरण करती हूँ, जिसमें भौंहों का सुन्दर नृत्य हो रहा है, सुन्दर बिम्बाधर भी कुछ फड़क रहे हैं; प्रियतम श्यामसुन्दर द्वारा भुजलताओं के पकड़ने से मधुर हुंकार गूँज रहा है, जो 'श्रीमुख' प्रेम-क्रीडा के कृत्रिम कोप से परिपूर्ण है, जिसे महान रसिक चूडामणि श्रीकृष्ण भी भय और कौतुक की दृष्टि से देखते रहते हैं ।

उन्मीलन्मुकुटच्छटापरिलसद्दिक्चक्रवालं स्फुरत्
केयूराङ्गदहारकङ्कणघटानिर्धूतरत्नच्छवि ।
श्रोणीमण्डलकिङ्किणीकलरवं मञ्जीरमञ्जुध्वनि –
श्रीमत्पादसरोरुहं भज मनो राधाभिधानं महः ॥१२०॥

ध्येय स्वरूप –

दिशाओं का समूह जिनके ज्योतिर्मय मुकुट की छटा से विशेष शोभित हो रहा है, जिनके चमकते हुए बाजूबंद, कङ्कण, हार व कड़ों के समूह से रत्नों की छवि तिरस्कृत हो रही है; नितम्ब प्रदेश में किङ्किणी झंकृत हो रही है; नूपुरों की मधुर ध्वनि से चरणकमल शोभित हैं; हे मन ! ऐसी 'राधा' नामक ज्योति का ध्यान करो ।

श्यामामण्डलमौलिमण्डनमणिः श्यामानुरागस्फुरद्
रोमोद्भेदविभाविताकृतिरहो काश्मीरगौरच्छविः ।
सातीवोन्मदकामकेलितरला मां पातु मन्दस्मिता
मन्दारद्रुमकुञ्जमन्दिरगता गोविन्दपट्टेश्वरी ॥१२१॥

रक्षा की प्रार्थना –

जो सभी ब्रज-तरुणियों ('श्यामा' षोडश वार्षिकी – १६ वर्ष की युवतियाँ) के समूह की भी भूषण रूपा मणि हैं, जिनकी आकृति प्रियतम के अनुराग से उत्पन्न दीप्तिमान रोमाञ्चों से चिह्नित है; केसर के समान जिनकी गौरकान्ति है और जो अति उन्मद काम-केलि के लिए चञ्चल हो रही हैं, जो मंद मुस्काने वाली हैं, जो 'मन्दार द्रुम-कुञ्जमन्दिर' में स्थित रहती हैं; ऐसी गोविन्द की पट्टेश्वरी (सिंहासनासीन स्वामिनी) मेरी रक्षा करें ।

('श्यामा' का लक्षण –

१. श्यामा यौवन मध्यस्था ।

२. कूपोदकं वटच्छाया श्यामा स्त्री स्निग्ध भोजनम् ।
शीतकाले भवेदुष्णमुष्णकाले च शीतलम् ॥

'कुँए का जल, वरगद की छाया, श्यामा स्त्री एवं घृत युक्त भोजन' ये चारों शीतकाल में उष्ण एवं ग्रीष्मकाल में शीतल हो जाते हैं । 'जिस नायिका का शरीर शीतकाल में उष्ण तथा ग्रीष्मकाल में शीतल रहता है, उसे 'श्यामा' कहा गया है ।')

उपास्यचरणाम्बुजे व्रजभृतां किशोरीगणैर् –
महद्भिरपि पूरुषैरपरिभाव्यभावोत्सवे ।
अगाधरसधामनि स्वपदपद्मसेवाविधौ
विधेहि मधुरोज्ज्वलामिव कृतिं ममाधीश्वरि ॥१२२॥

सेवा की प्रार्थना –

हे श्रेष्ठ ब्रजवासियों की किशोरीगणों की उपासना योग्य चरणकमलों वाली ! नारदादि महापुरुषों से भी अचिन्त्य भावोत्सव वाली हे स्वामिनी ! अबाध रस के स्थान आपके श्रीचरणों में सेवा के लिए मेरे मधुर और उज्ज्वल कर्तव्य का अधिकार दान करें । (चौथे चरण में 'मधुरोज्ज्वनिधिं' के स्थान पर 'मधुरोज्ज्वलामिव कृतिम्' का पाठ है, उसी के अनुसार अर्थ है) ।

आनम्राननचन्द्रमीरितदृगापाङ्गच्छटामन्थरम्
किञ्चिद् दर्शिशिरोवगुण्ठनपटं लीलाविलासावधिम् ।
उन्नीयालकमञ्जरीः कररुहैरालक्ष्य सन्नागर –
स्याङ्गेऽङ्गं तव राधिके सचकितालोकं कदा लोकये ॥१२३॥

गुप्त विहार में भी 'श्री-अङ्ग' दर्शन-इच्छा –

हे श्रीराधे ! जब चतुर शिरोमणि श्रीकृष्ण के श्री-अङ्गों से आपके श्री-अङ्ग

आलिङ्गित होंगे, मैं अपने नखों से आपकी केश-लटों को उठाकर कब देखूँगी कि आपका कुछ झुका हुआ 'श्रीमुखचन्द्र' जिसमें कटाक्षों की छटा (लज्जावश) कुछ शिथिल बनी हुई, सिर पर थोड़ा-सा घूँघट है, जो लीला-विलास की सीमा है ।

राकाचन्द्रो वराको यदनुपमरसानन्दकन्दाननेन्दोस् –
तत्तादृक्चन्द्रिकाया अपि किमपि कलामात्रकस्याणुतोऽपि ।
यस्याः शोणाधरश्रीविधृतनवसुधामाधुरीसारसिन्धुः
सा राधा कामबाधाविधुरमधुपतिप्राणदा प्रीयतां नः ॥१२४॥

अद्भुत सौन्दर्य –

बेजोड़ रसानन्द के मूल उस मुखचन्द्र की अवर्णनीय चाँदनी की कला के अणु से भी पूर्णिमा का चाँद तुच्छ है, जिनके लाल अधरों ने सुन्दरता की शोभा की नवीन अमृत माधुरी के सार के भी समुद्र को धारण कर रखा है; वे 'श्रीराधा' काम-बाधा से पीड़ित (विधुर) मधुपति कृष्ण की जीवनदायिनी हम पर प्रसन्न हों ।

राकानेकविचित्रचन्द्र उदितः प्रेमामृतज्योतिषाम्
वीचीभिः परिपूरयेदगणितब्रह्माण्डकोटिं यदि ।
वृन्दारण्यनिकुञ्जसीमनि तदाभासः परं लक्ष्यते
भावेनैव यदा तदैव तुलये राधे तव श्रीमुखम् ॥१२५॥

अभूतोपमा अलंकार से रूप-वर्णन –

पूर्णिमा के अनेक विचित्र चन्द्र उदय को प्राप्त होकर अपनी प्रेमामृत रूपी किरणों की ज्योतिर्मयी लहरों से असंख्य ब्रह्माण्डों को भर दें, उस आभास को श्रीवृन्दावन के कुञ्जों की सीमा में भाव भरी दृष्टि से देखने पर उस चाँद के साथ हे श्रीराधे ! आपके श्रीमुख की तुलना सम्भव है ।

(सामान्य चन्द्र से अमृतज्योति का प्रकाश होता है किन्तु यह विशिष्ट चन्द्र 'प्रेमामृत से भरी ज्योतियों' का प्रकाश करता है, इसीलिए इसे 'विचित्र चन्द्र' कहा गया ।)

कालिन्दीकूलकल्पद्रुमतल निलयप्रोल्लसत्केलिकन्दा
वृन्दाटव्यां सदैव प्रकटतररहोवल्लवीभावभव्या ।
भक्तानां हृत्सरोजे मधुररससुधास्यन्दिपादारविन्दा
सान्द्रानन्दाकृतिर्नः स्फुरतु नवनवप्रेमलक्ष्मीरमन्दा ॥१२६॥

कृपामयी का वैभव –

'श्रीयमुनाजी के तट पर कल्पवृक्ष के नीचे आपके निवास स्थल में श्रेष्ठ विलास की मूल स्वरूपा' जो श्रीवन में सर्वदा प्रकट रहने वाली एकान्त सहचरीगण ललिता, विशाखा आदि प्रमुख सखियों की भाव भरी सेवा से गौरवान्वित हैं; जो आश्रितजनों के हृदयकमल में अपने श्रीचरणों की स्थापना से मधुर-रस-सुधा को निर्झरित करती हैं; वे सघन आनन्दमूर्ति नित्य नवीनता युक्त प्रेमलक्ष्मी (श्रीराधा) मेरे हृदय में प्रकाशित हों ।

शुद्धप्रेमैकलीलानिधिरहह महातङ्कमङ्कस्थिते च
प्रेष्ठे बिभ्रत्यदभ्रस्फुरदतुलकृपास्नेहमाधुर्यमूर्तिः ।
प्राणालीकोटिनीराजितपदसुषमामाधुरी माधवेन
श्रीराधामामगाधामृत रसभरिते कर्हि दास्येभिषिञ्चेत् ॥१२७॥

रसीली 'श्रीराधा' की सेवा-याचना –

पवित्रतम प्रेम लीलाओं की एकमात्र जो उत्पत्ति स्थान हैं, प्रियतम श्रीकृष्ण की गोद में भी रहते हुए जो वियोग से आशंकित रहती हैं, जिनके श्रीचरण की सौन्दर्य-माधुरी की आरती 'माधव' कोटि-कोटि प्राणों से किया करते हैं; वे सर्वाधिक

दीप्तिमती, बेजोड़ कृपा से माधुरी की मूर्ति 'श्रीराधा' अपने अगाध अमृत से भरे हुए दास्य-रस से मुझे कब सींचने की कृपा करेंगी ?

वृन्दारण्यनिकुञ्जसीमसु सदा स्वानङ्गरङ्गोत्सवैर् –
माद्यन्त्यद्भुतमाधवाधरसुधामाध्वीकसंस्वादनैः ।
गोविन्दप्रियवर्गदुर्गमसखीवृन्दैरनालक्षिता
दास्यं दास्यति मे कदा नु कृपया वृन्दावनाधीश्वरी ॥१२८॥

'श्रीजी' की कृपा से दास्य-प्राप्ति –

श्रीवन के निकुञ्ज-प्रदेश में अपने प्रेम-विलासोत्सवों से भरी हुई 'माधव के अद्भुत अधरामृत के आस्वादन से' जो उन्मत्त रहती हैं; श्रीगोविन्द के प्रियजनों को भी जो 'केलि' दुर्लभ है, सखी-समुदाय भी जिसे नहीं देख पाता; ऐसी 'वृन्दावनरानी' मुझे कब अमृत भरा दास्य देंगी ?

मल्लीदामनिबद्धचारुकबरं सिन्दूररेखोल्लसत्
सीमन्तं नवरत्नचित्रतिलकं गण्डोल्लसत्कुण्डलम् ।
निष्कग्रीवमुदारहारमरुणं बिभ्रद्दुकूलं नवम्
विद्युत्कोटिनिभं स्मरोत्सवमयं राधाख्यमीक्षे महः ॥१२९॥

साधन की सफलता (इष्ट-दर्शन)

जिनका सुन्दर जूड़ा नये बेला (मल्लिका) के फूलों की माला से बँधा हुआ, 'मांग' सिंदूर-रेखा से भरी हुई, भाल पर नवीन रत्नों से रचा हुआ विचित्र तिलक है, गण्डमण्डल (कपोलों) पर कुण्डल उल्लसित हैं, ग्रीवा में कण्ठाभरण और हृदय पर सुन्दर हार शोभित है तथा अरुण रंग का नया दुपट्टा धारण कर रखा है, करोड़ों दामिनियों के समान जिनकी प्रभा है; कामोत्सव से परिपूर्ण नित्य प्रेमोत्सवमयी उस 'श्रीराधा' नामक तेज का मैं दर्शन करूँ ।

प्रेमोल्लासैकसीमा परमरसचमत्कारवैचित्र्यसीमा
सौन्दर्यस्यैकसीमा किमपि नववयोरूपलावण्यसीमा ।
लीलामाधुर्यसीमा निजजनपरमौदार्यवात्सल्यसीमा
सा राधा सौख्यसीमा जयति रतिकलाकेलिमाधुर्यसीमा ॥१३०॥

असीम का ससीम वर्णन –

'श्रीराधा' जो उल्लास भरे प्रेम की एकमात्र सीमा हैं, परम प्रेमरस के चमत्कार की विचित्रता की सीमा हैं, सुन्दरता की अन्तिम सीमा हैं; अवर्णनीय नवीन अवस्था, नवीन रूप, नवीन लावण्य की सीमा हैं; वे आश्रितजनों के प्रति उदारता और वात्सल्य की सीमा हैं, रति-कला-क्रीड़ा की माधुरी की सीमा हैं, सुख की परम सीमा हैं; उनकी जय हो ।

यस्यास्तत्सुकुमारसुन्दरपदोन्मीलन्नखेन्दुच्छटा
लावण्यैकलवोपजीविसकलश्यामामणीमण्डलम् ।
शुद्धप्रेमविलासमूर्तिरधिकोन्मीलन्महामाधुरी
धारासारधुरीणकेलिविभवा सा राधिका मे गतिः ॥१३१॥

श्रीराधा की अनन्य शरणागति –

जिनके सुकुमार और सुन्दर श्रीचरणों से प्रकाशित नखचन्द्रमणि के लावण्य के लेश से समस्त मणि स्वरूपा श्यामा गुण सम्पन्न नायिकाओं का समूह अनुप्राणित हो रहा है, जो शुद्ध प्रेमविलास की मूर्ति हैं और सर्वाधिक रूप से उमड़ती हुई महामधुरता की धारा के सार की क्रीड़ा-सम्पत्ति से युक्त हैं; वे 'श्रीराधा' ही मेरी गति हैं ।

कलिन्दगिरिनन्दिनीसलिलबिन्दुसन्दोहभृन्
मृदूद्गतिरतिश्रमं मिथुनमद्भुतक्रीडया ।

अमन्दरसतुन्दिल भ्रमरवृन्दवृन्दाटवी –
निकुञ्जवरमन्दिरे किमपि सुन्दरं नन्दति ॥१३२॥

'युगल-क्रीड़ा-वैभव' दर्शन –

श्रीयमुना के जलकणों को धारण किए हुए कोमल किन्तु अमर्यादित गति से बढ़ी हुई रति के श्रम से श्रमित 'युगल' अपनी अद्भुत क्रीड़ा से रस-पुष्ट भ्रमर समूह वाले श्रीवृन्दावन की निकुञ्जों के श्रेष्ठ मन्दिरों में आनन्दित हो रहे हैं।

व्याकोशेन्दीवरविकसितामन्दहेमारविन्द
श्रीमन्निस्यन्दनरतिरसान्दोलिकन्दर्पकेलि ।
वृन्दारण्ये नवरससुधास्यन्दिपादारविन्दम्
ज्योतिर्द्वन्द्वं किमपि परमानन्दकन्दं चकास्ति ॥१३३॥

'युगल-ज्योति' श्रीधाम में प्रकाशित –

विकसित नीलकमल और पूर्ण प्रफुल्लित स्वर्णकमल की शोभा वाली निर्झरित रति-रस से चञ्चल बनी हुई प्रेमकेलि वाली, नवीन रस-सुधा को प्रवाहित करने वाली, अवर्णनीय परमानन्द की उत्पत्ति स्थली वाली; ऐसी गौर-श्याम रूप 'युगल-ज्योति' श्रीवृन्दावन में प्रकाशित हो रही है।

ताम्बूलं क्वचिदर्पयामि चरणौ संवाहयामि क्वचिन्
मालाद्यैः परिमण्डये क्वचिदहो संवीजयामि क्वचित् ।
कर्पूरादिसुवासितं क्व च पुनः सुस्वादु चाम्भोमृतम्
पायाम्येव गृहे कदा खलु भजे श्रीराधिकामाधवौ ॥१३४॥

सेवा-प्राप्ति की इच्छा –

कभी पान-बीड़ा अर्पण करके, कभी श्रीचरणों को दबा करके, कभी माला आदि आभूषण से श्रृंगार करके, कभी पंखे से हवा करके, कभी कर्पूर आदि से

सुगन्धित स्वादिष्ट अमृत-तुल्य जल पिलाकर 'निकुञ्ज भवन में' मैं कब निश्चित रूप से 'श्रीराधा-माधव' युगल की सेवा करुँगी ?

प्रत्यङ्गोच्छलदुज्ज्वलामृतरसप्रेमैकपूर्णाम्बुधिर् –
लावण्यैकसुधानिधिः पुरुकृपावात्सल्यसाराम्बुधिः ।
तारुण्यप्रथमप्रवेशविलसन्माधुर्यसाम्राज्यभूर् –
गुप्तः कोऽपि महानिधिर्विजयते राधारसैकावधिः ॥१३५॥

महानिधि 'राधा' सर्वोत्कृष्ट रूप से विराजित –

प्रेम का एक बेजोड़ सागर है, जिसके सभी अङ्गों व प्रत्यंगों से सदा उज्जवल अमृतरस उमड़ता रहता है; वह प्रेम-महानिधि-लावण्य का भी एक बेजोड़ समुद्र है, पराकाष्ठा की कृपा और वात्सल्य का सार भी है । यौवन के प्रथम प्रवेश से विलसित मधुरता के साम्राज्य की उत्पत्ति स्थली है, रस की एकमात्र सीमा है; वही 'राधा' नाम वाली कोई परम गुप्त महानिधि सबसे उत्कृष्ट होकर विजय को प्राप्त हो रही है ।

यस्याः स्फूर्जत्पदनख मणिज्योतिरेकच्छटायाः
सान्द्रप्रेमामृतरसमहासिन्धुकोटिर्विलासः ।
सा चेद् राधा रचयति कृपादृष्टिपातं कदाचिन्
मुक्तिस्तुच्छीभवति बहुशः प्राकृताप्राकृतश्रीः ॥१३६॥

राधा-कृपाकटाक्ष की सर्वोच्चता –

जिनके प्रकाशित 'श्रीचरण-नख-मणि-ज्योति की एक छटा का विलास'घनीभूत प्रेमामृत रस के करोड़ों समुद्रों के समान है; वे 'श्रीराधा' यदि कभी करुणा-दृष्टि कर दें तो सभी लोक-परलोक की शोभाएँ और मुक्ति भी तुच्छ बन जाएँगी ।

कदा वृन्दारण्ये मधुरमधुरानन्दरसदे
प्रियेश्वर्याः केलीभवननवकुञ्जानि मृगये ।
कदा श्रीराधायाः पदकमलमाध्वीकलहरी –
परीवाहैश्चेतो मधुकरमधीरं मदयिता ॥ १३७॥

तीव्र इच्छा –

मधुरातिमधुर आनन्द-रस प्रदान करने वाले वृन्दावन में प्रियेश्वरी श्रीश्यामाजी के क्रीडा-भवन के नवीन कुञ्जों को मैं कब खोजूँगी और श्रीराधारानी के चरणकमल के मकरन्द की लहरों की सतत् वर्षा से मेरा मन रूपी भौंरा कब अधीर व उन्मत्त हो जाएगा ?

राधाकेलिनिकुञ्जवीथिषु चरन् राधाभिधामुच्चरन्
राधाया अनुरूपमेव परमं धर्मं रसेनाचरन् ।
राधायाश्चरणाम्बुजं परिचरन् नानोपचारैर्मुदा
कर्हि स्यां श्रुतिशेखरोपरि चरन्नाश्चर्यचर्यां चरन् ॥ १३८॥

'श्रीजी' की सेवा की तीव्र इच्छा –

श्रीराधा की क्रीड़ा भरी निकुञ्ज गलियों में विचरण करते हुए, 'श्रीराधा' नाम का उच्चारण करते हुए, श्रीराधा के अनुरूप अपने परम धर्म (किङ्करी स्वरूप) का रसपूर्ण आचरण करते हुए, उनके चरणकमलों की रसानुकूल सामग्रियों से प्रसन्नतापूर्वक सेवा करते हुए (आश्चर्य रूप उपरोक्त सेवा का आचरण करते हुए) कब मैं वेदातीत आचरण के योग्य हो जाऊँगी ?

यातायातशतेन सङ्गमितयोरन्योन्यवक्रोल्लसच्
चन्द्रालोकनसम्प्रभूतबहुलानङ्गाम्बुधिक्षोभयोः ।

अन्तःकुञ्जकुटीरतल्पगतयोर्दिव्याद्भुतक्रीडयोः
राधामाधवयोः कदा नु शृणुयां मञ्जीरकाञ्चीध्वनिम् ॥ १३९॥

'नूपुर-ध्वनि' श्रवणेच्छा –

जिनका सखियों ने सैकड़ों बार आ-जा कर संगम कराया है, जिसमें वक्र नेत्र-क्षेपण रूप मुखचन्द्र-दर्शन से दोनों ओर विस्तृत काम-समुद्र प्रकट हो रहे हैं और युगल निभृत कुञ्ज-कुटीर में स्थित दिव्य शय्या पर विराजित हो 'दिव्य अद्भुत क्रीड़ा' में संलग्न हैं; जिसमें 'श्रीजी की मञ्जीर और माधव की कटि-किङ्किणी' दोनों की मधुर सम्मिलित-ध्वनि उत्पन्न हो रही है; मैं उसे कब सुनूँगी ?

("वह नूपुर ध्वनि कबै सुनैहौं ।
प्रियतम संग रुनक झुन बाजत, सिसकनि विषम ताल जो मिलैहौं ॥" (भोरी सखी)
युगल अनिर्वचनीय 'गुप्त-विहार' में संलग्न हैं ।)

अहो भुवनमोहनं मधुरमाधवीमण्डपे
मधूत्सवसमुत्सुकं किमपि नीलपीतच्छवि ।
विदग्धमिथुनं मिथोदृढतरानुरागोल्लसन्
मदं मदयते कदा चिरतरं मदीयं मनः ॥ १४०॥

तीव्र इच्छा –

अहो ! मधुर माधवी लता के मण्डप में मिलनोत्सव के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित एवं परस्पर के सुदृढ अनुराग मद से उल्लसित भुवन-मोहन नील एवं पीत कान्ति युक्त कोई अकथनीय चतुर युगल (श्रीराधा-माधव) मेरे मन को कब सर्वदा के लिए उन्मत्त करेंगे ?

राधानामसुधारसं रसयितुं जिह्वास्तु मे विह्वला
पादौ तत्पदकाङ्क्षितासु चरतां वृन्दाटवीवीथिषु ।

तत्कर्मैव करः करोतु हृदयं तस्याः पदं ध्यायतात्
तद्भावोत्सवतः परं भवतु मे तत्प्राणनाथे रतिः ॥१४१॥

उत्कट इच्छा –

'श्रीराधानामामृत-रस' के सर्वदा आस्वादन के लिए मेरी जिह्वा लालसा से भर जाए; मेरे पग श्रीचरणांकित श्रीवन की गलियों में ही विचरें; मेरे हाथ उनकी सेवा में ही लगे रहें; मेरा हृदय सदा उनके श्रीचरणों के ध्यान में रहे और उन्हीं के प्रति उत्साह भरे भाव से उनके प्राणनाथ श्रीकृष्ण में मेरी प्रीति हो ।

मन्दीकृत्य मुकुन्दसुन्दरपदद्वन्द्वारविन्दामल –
प्रेमानन्दममन्दमिन्दुतिलकाद्युन्मादकन्दं परम् ।
राधाकेलिकथारसाम्बुधिचलद्वीचीभिरान्दोलितम्
वृन्दारण्यनिकुञ्जमन्दिरवरालिन्दे मनो नन्दतु ॥१४२॥

'श्रीराधा-रस' की सर्वोच्चता –

श्रीमुकुन्द के सुन्दर युगल चरणकमल का निर्मल प्रेमानन्द, चन्द्रमौलि भगवान् शंकर आदि के लिए भी परम उन्माद का मूल है किन्तु मेरा मन उसे भी शिथिल करके 'श्रीराधा-कथा-चर्चा' के रस-समुद्र की चञ्चल लहरों से झकझोरा हुआ वृन्दावन में स्थित निकुञ्ज-भवन के भव्य आँगन में आनन्द प्राप्त करे ।

राधानामैव कार्यं ह्यनुदिनमिलितं साधनाधीशकोटिस् –
त्याज्यो नीराज्य राधापदकमलसुधासत्पुमर्थाग्रकोटिः ।
राधापादाब्जलीलाभुवि जयति सदा मन्दमन्दारकोटिः
श्रीराधाकिङ्करीणां लुठतिचरणयोरद्भुता सिद्धिकोटिः ॥१४३॥

'श्रीराधा' की महिमा का परत्व –

यदि 'श्रीराधा' नाम श्रवण-कीर्तन आदि के रूप में मिले तो करोड़ों श्रेष्ठ

साधन भी छोड़ दिए जायेंगे । 'श्रीराधापदकमल-सुधा' पर करोड़ों मोक्ष आदि पुरुषार्थ वार दिए जाएँगे । 'श्रीराधाचरणकमललीला-भूमि श्रीवृन्दावन' में अत्यन्त वैभवशाली करोड़ों कल्पवृक्ष विद्यमान रहते हैं । 'श्रीराधा-किङ्करी' के श्रीचरणों में अद्भुत करोड़ों सिद्धियाँ लोटती रहती हैं अर्थात् 'श्रीराधा-यश' के आगे ये सब निरर्थक हैं ।

मिथोभङ्गीकोटिप्रवहदनुरागामृतरसो –
त्तरङ्गभ्रूभङ्गक्षुभितबहिरभ्यन्तरमहो ।
मदाघूर्णन्नेत्रं रचयति विचित्रं रतिकला –
विलासंतत्कुञ्जे जयति नवकैशोरमिथुनम् ॥१४४॥

युगल नव-किशोर की सर्वश्रेष्ठता –

प्रिया-प्रियतम के परस्पर के हाव-भाव विस्तार से 'प्रेमामृत-रस' बह चला, जिसकी तरंगें युगल किशोर को भीतर और बाहर से प्रेम का क्षोभ उत्पन्न कर रही हैं; जिसमें भौहों का नचाना ही लहरें हैं, इससे दोनों के नेत्र मदभरे गतिशील हो रहे हैं । इस प्रकार नव-किशोर-युगल निकुञ्ज भवन के मध्य में रति-विलास की रचना करके सर्वोच्चता को प्राप्त हो रहे हैं ।

काचिद् वृन्दावननवलतामन्दिरे नन्दसूनोर् –
दृप्यद्दोष्कन्दलदृढपरीरम्भनिस्पन्दगात्री ।
दिव्यानन्ताद्भुतरसकलाः कल्पयन्त्याविरास्ते
सान्द्रानन्दामृतरसघनप्रेममूर्तिः किशोरी ॥१४५॥

प्रेमरूपा 'किशोरीजी' की नित्यता –

नन्दनन्दन श्रीकृष्ण की गर्वीली बाहुलताओं के गाढ़ आलिङ्गन से जिनके श्री-अङ्ग स्पन्दन रहित अर्थात् शिथिलता को प्राप्त हो गए हैं, जो अद्भुत एवं अनन्त रस-कलाओं को उत्पन्न करती हैं, घनीभूत आनन्दामृत-रस एवं प्रेम की सघन मूर्ति

अनिर्वचनीय कोई किशोरी श्रीवृन्दावन के नवीन-लता-मन्दिर में नित्य विराजमान हैं ।

न जानीते लोकं न च निगमजातं कुलपरं –
परां वा नो जानात्यहह न सतां चापि चरितम् ।
रसं राधायामाभजति किल भावं व्रजमणौ
रहस्ये तद् यस्य स्थितिरपि न साधारणगतिः ॥१४६॥

श्रीराधा के रसिकों का स्वरूप –

जो महानुभाव इस एकान्त ब्रज में ब्रजमणि कृष्ण में भाव और 'श्रीराधा' का निश्चित रूप से सरस भजन करते हैं, वे तो न लोक को जानते हैं, न वेद समूह को, न कुल-परम्परा को और न साधुजनों के चरित्र को; ऐसे रसिकजनों की स्थिति असाधारण होती है ।

ब्रह्मानन्दैकवादाः कतिचन भगवद्वन्दनानन्दमत्ताः
केचिद् गोविन्दसख्याद्यनुपमपरमानन्दमन्ये स्वदन्ते ।
श्रीराधाकिङ्करीणां त्वखिलसुखचमत्कारसारैकसीमा
तत्पादाम्भोजराजन्नखमणिविलसज्ज्योतिरेकच्छटापि ॥१४७॥

श्रीजी की किङ्करी भाव की श्रेष्ठता –

कोई एकमात्र ब्रह्मानन्दवादी है, कोई भगवद्-वन्दना के आनन्द में उन्मत्त है, कोई श्रीगोविन्द के सख्य भाव आदि में अनुपम परमानन्द मानकर उसके आस्वादन में लगे हुए हैं किन्तु 'श्रीराधा-किङ्करियों' के समस्त सुख 'चमत्कार के सार की एकमात्र सीमा **श्रीराधाचरणकमल** में विलसित श्रीनखज्योति की' एक किरण मात्र ही है ।

न देवैर्ब्रह्माद्यैर्न खलु हरिभक्तैर्न सुहृदा –
दिभिर्यद् वै राधामधुपतिरहस्यं सुविदितम् ।
तयोर्दासीभूत्वा तदुपचितकेलीरसमये
दुरन्ताः प्रत्याशा हर हर दृशोर्गोचरयितुम् ॥ १४८॥

'राधा-भाव' ही सर्वश्रेष्ठ –

श्रीराधामाधव की निभृत निकुञ्जलीला के रहस्य को न तो ब्रह्मा आदि देवता ही जान सके और न हरि-भक्त और न श्रीकृष्ण के मित्रगण आदि भी निश्चित रूप से जान पाए हैं (भगवान् शंकर भी गोपी रूप से रास-क्रीडा तक ही सीमित रहे) । श्रीराधामाधव के द्वारा परिपुष्ट एवं प्रतिक्षण वर्द्धमान अन्तरंग केलि-रस को उन्हीं की दासी बनकर नेत्रों से देखने की अदम्य उत्कट अभिलाषा (अनन्त मनोरथ) मुझे है; हे युगल सरकार मेरी इस आशा को केलि-रस का आस्वादन कराकर शान्त कीजिए ।

('हर-हर' की द्विरावृत्ति प्रार्थनातिशय की द्योतक है । 'रसकुल्या में' - इस श्लोक के प्रथमचरण में "न वेदै ..." पद है तथा चतुर्थचरण में "हरि हरि..." पद है; "हरि हरि..." पाठ असंगत प्रतीत हो रहा है ।)

त्वयि श्यामे नित्यप्रणयिनि विदग्धे रसनिधौ
प्रिये भूयो भूयः सुदृढमतिरागो भवतु मे ।
इति प्रेष्ठेनोक्ता रमण मम चित्ते तव वचो
वदन्तीति स्मेरा मम मनसि राधा विलसतु ॥ १४९॥

श्रीयुगल की परस्पर वार्ता –

"हे श्यामे ! हे नित्य प्रणयिनी !! हे विदग्धे !!! हे प्रिये !!! हे रस की निधि !!! मेरा बारम्बार आपमें दृढ अनुराग हो ।" आपके प्रति इस प्रकार प्रियतम श्यामसुंदर

के कहे जाने पर, 'मेरे हृदय में भी आपके प्रति ये ही वचन हैं' ऐसा कहती हुई मंद हास्या श्रीराधा मेरे हृदय में सर्वदा विलास करें ।

सदानन्दं वृन्दावननवलतामन्दिरवरेष्व् –
अमन्दैः कन्दर्पोन्मदरतिकलाकौतुकरसम् ।
किशोरं तज्ज्योतिर्युगलमतिघोरं मम भव –
ज्वलज्ज्वालं शीतैः स्वपदमकरन्दैः शमयतु ॥ १५० ॥

'श्रीचरण-मकरन्द-रस' से भवाग्नि की शान्ति –

श्रीवृन्दावन की नवीन लता के श्रेष्ठ मन्दिर में तीव्र काम से उन्मत्त, रति की कलापूर्ण कौतुक रस वाली, आनन्दमय किशोर आकृति वाली 'युगल-ज्योति' अपने चरणकमलों के शीतल मकरन्द से मेरे प्रचण्ड और घोर ज्वालापूर्ण त्रिविध भव-ताप को शांत करे ।

उन्मीलन्नवमल्लिदामविलसद्धम्मिल्लभारे बृहच् –
छ्रोणीमण्डलमेखलाकलरवे शिञ्जत्सुमञ्जीरिणि ।
केयूराङ्गदकङ्कणावलिलसद्दोर्वल्लिदीप्तिच्छटे
हेमाम्भोरुहकुड्मलस्तनि कदा राधे दृशा पीयसे ॥ १५१ ॥

दर्शनेच्छा –

खिली हुई नयी मल्ली की माला से शोभायमान केशपाश वाली ! हे पृथु नितम्ब मण्डल पर किङ्किणी की मधुर ध्वनि वाली ! बजते हुए नूपुर धारण करने वाली ! हे बाजूबन्द अङ्गद तथा कङ्कणों के समूह से शोभित भुज-लताओं की दीप्तिमान् छटा वाली ! हे स्वर्णकमल की कली जैसे स्तनों वाली ! हे श्रीराधे ! आपके ऐसे 'रूप-रस' को मैं कब अपने नेत्रों से पीऊँगी ?

अमर्यादोन्मीलत्सुरतरसपीयूषजलधेः
तरङ्गैरुत्तुङ्गैरिव किमपि दोलायिततनुः ।
स्फुरन्ती प्रेयोङ्के स्फुटकनकपङ्केरुहमुखी
सखीनां नो राधे नयनसुखमाधास्यसि कदा ॥ १५२ ॥

स्वामिनी से प्रार्थना –

मर्यादा को तोड़कर उमड़ते हुए प्रेमानन्द रूप अमृत-सागर की उछलती हुई तरंगों से आपका श्रीवपु अवर्णनीय रूप-यौवन से आन्दोलित हो रहा है । आप प्रियतम के अंक में चञ्चल हो रही हैं । स्वर्णकमल के समान मुखवाली हे श्रीराधे ! आप हम सब सखियों के नेत्रों को कब आनन्द देंगी ?

क्षरन्तीव प्रत्यक्षरमनुपमप्रेमजलधिम्
सुधाधारावृष्टीरिव विदधती श्रोत्रपुटयोः ।
रसार्द्रा सन्मृद्वी परमसुखदा शीतलतरा
भवित्री किं राधे तव सह मया कापि सुकथा ॥ १५३ ॥

'स्वामिनी' से सम्भाषण की इच्छा –

जिसके प्रत्येक अक्षर से अनुपम प्रेम-समुद्र निर्झर की तरह बह रहा है, जो कानों में अमृतधारा की वर्षा का मानो विधान करता है । हे श्रीराधे ! ऐसी अनिर्वचनीय, रसीली, परम कोमल, अत्यन्त शीतल और सुखभरी सुन्दर वार्ता आपके साथ क्या कभी होगी ?

अनुल्लिख्यानन्तानपि सदपराधान् मधुपतिर् –
महाप्रेमाविष्टस्तव परमदेयं विमृशति ।
तवैकं श्रीराधे गृणत इह नामामृतरसम्
महिम्नः कः सीमां स्पृशति तव दास्यैकमनसाम् ॥ १५४ ॥

'राधा-नाम' माहात्म्य –

जो कोई 'श्रीराधा' आपके इस एक ही नाम रूपी अमृत-रस को गाता है या स्मरण करता है, उसके अनन्त महद् अपराधों की भी गणना न करके मधुपति कृष्ण महान प्रेम में आविष्ट होकर यह विचार करते हैं – इस नामोच्चारक को क्या दे दें, फिर जिन्होंने एकमात्र आपके दास्य-भाव को चित्त में लक्ष्य कर रखा है, उनकी महिमा की सीमा कौन छू सकता है ?

लुलितनवलवङ्गोदारकर्पूरपूरम्
प्रियतममुखचन्द्रोद्गीर्णताम्बूलखण्डम् ।
घनपुलककपोला स्वादयन्ती मदास्ये –
र्पयतु किमपि दासीवत्सला कर्हि राधा ॥ १५५॥

'स्वामिनी' का अद्भुत वात्सल्य –

श्रीप्रियतम के मुखचन्द्र द्वारा चर्बित नव लवंग चूर्ण एवं भरपूर कर्पूर से युक्त ताम्बूल खण्ड का आस्वादन करने से जिनके कपोलों पर रोमाञ्च हो रहा है; ऐसी अवर्णनीय 'दासी-वत्सला श्रीजी' कब चर्बित उस ताम्बूल (पान बीड़ा) को मेरे मुख में देंगी ?

सौन्दर्यामृतराशिरद्भुतमहालावण्यलीलाकला
कालिन्दीवरवीचिडम्बरपरिस्फूर्जत्कटाक्षच्छविः ।
सा कापि स्मरकेलिकोमलकलावैचित्र्यकोटिस्फुरत्
प्रेमानन्दघनाकृतिर्दिशतु मे दास्यं किशोरीमणिः ॥ १५६॥

'कैङ्कर्य' की याचना –

जिनके नेत्रों की कटाक्ष छटा मनोहर यमुना की लहरों से विलसित है, जो काम-क्रीड़ाओं की करोड़ों कोमल कलाओं की विचित्रताओं का विकास करती हैं ।

अन्यान्य अद्भुत महत्तम लावण्य-लीला भी जिनकी एक अंशमात्र हैं; वे प्रेमानन्द सघनमूर्ति और सौन्दर्यामृत की राशि अवर्णनीय किशोरीमणि मुझे अपना दास्याधिकार देकर दासी रूप से स्वीकार करें ।

दुकूलमतिकोमलं कलयदेव कौसुम्भकम्
निबद्धमधुमल्लिकाललितमाल्यधम्मिल्लकम् ।
बृहत्कटितटस्फुरन्मुखरमेखलालङ्कृतम्
कदा नु कलयामि तत्कनकचम्पकाभं महः ॥१५७॥

दर्शनेच्छा –

कसूंभी (गुलाबी) रंग का कोमल दुपट्टा धारण कर रखा है । जिसका जूड़ा बासंती मल्लिका की सुन्दर मालाओं से बँधा हुआ है । विशाल कटितट (नितम्ब भाग) पर चमकती और बजती हुई कौंधनी शोभित है । सुनहरे चम्पा जैसी कान्ति वाली उस किशोर-ज्योति को मैं कब देखूँगी ?

कदा रासे प्रेमोन्मदरसविलासेऽद्भुतमये
दृशोर्मध्ये भ्राजन्मधुपतिसखीवृन्दवलये ।
मुदान्तः कान्तेन स्वरचितमहालास्यकलया
निषेवे नृत्यन्तीं व्यजननवताम्बूलशकलैः ॥१५८॥

रास में सेवा की इच्छा –

उन्मद प्रेम के वश से रसीले अद्भुत रास में, जहाँ मधुपति कृष्ण के चारों ओर कङ्कणाकार शोभित सखियाँ हैं और जिसमें मुदित चित्र वाले कान्त कृष्ण के साथ अपने ही द्वारा रचित लास्य गति के साथ श्रीजी नृत्य कर रही हैं; मैं कब पंखा, नव ताम्बूल, सुपारी आदि से उनकी सेवा करूँगी ?

प्रसृमरपटवासे प्रेमसीमाविकासे
मधुरमधुरहासे दिव्यभूषाविलासे ।
पुलकितदयितांसे संवलद्बाहुपाशे
तदतिललितरासे कर्हि राधामुपासे ॥१५९॥

रास में 'स्वामिनी' की सेवा –

जहाँ सुगन्धित चूर्ण (पिसा हुआ सुगन्धित पदार्थ) बिखरा हुआ है, प्रेम अपनी पूर्ण सीमा तक विकसित है; मधुर-मधुर हास-परिहास हो रहा है, जहाँ दिव्य बजने-गहनों की शोभा और रोमाञ्चित कन्धों पर पुलकित भुजाएँ हैं जो परस्पर लिपटी हुई हैं; उस कमनीय रास में कब मैं श्रीराधा की अभ्यर्चना करूँगी ?

यदि कनकसरोजं कोटिचन्द्रांशुपूर्णम्
नवनवमकरन्दस्यन्दिसौन्दर्यधाम ।
भवति लसितचञ्चत्खञ्जनद्वन्द्वमास्यम्
तदपि मधुरहास्यं दत्तदास्यं न तस्याः ॥१६०॥

'श्रीमुख' स्मरण –

यदि सुन्दरता का धाम कोई 'सुनहरा कमल' करोड़ों चन्द्रमाओं की किरणों से भरा हुआ है, जिससे नया-नया मकरन्द स्रवित हो रहा है, जिसमें दो चञ्चल खञ्जन खेल रहे हों; ऐसा अनुपम कमल भी 'श्रीजी के मुखकमल' के मुस्कुराहट की दासता भी नहीं कर सकता है ।

सुधाकरमुधाकरं प्रतिपदस्फुरन्माधुरी –
धुरीणनवचन्द्रिकाजलधितुन्दिलं राधिके ।
अतृप्तहरिलोचनद्वयचकोरपेयं कदा
रसाम्बुधिसमुन्नतं वदनचन्द्रमीक्षे तव ॥१६१॥

'श्रीमुख' की दर्शनेच्छा –

जो 'श्रीमुख' चन्द्रमा को भी व्यर्थ करने वाला है, प्रतिक्षण चमकती हुई मधुरता के सार रूप श्रेष्ठतम किरणों के समुद्र को बढ़ाने वाला है, जो श्रीकृष्ण के प्यासे दोनों नेत्र-चकोरों से पान करने योग्य रस-समुद्र द्वारा सम्यक् उन्नत है। हे श्रीराधे ! मैं उस मुखचन्द्र को कब देखूँगी ?

अङ्गप्रत्यङ्गरिङ्गन्मधुरतरमहाकीर्तिपीयूषसिन्धोर् –
इन्दोः कोटिर्विनिन्दद्वदनमतिमदालोलनेत्रं दधत्याः ।
राधायाः सौकुमार्याद्भुतललिततनोः केलिकल्लोलिनीनाम्
आनन्दस्यन्दिनीनां प्रणयरसमयान् किं विगाहे प्रवाहान् ॥१६२॥

'युगल-केलि' दर्शन –

जिनके प्रत्यङ्ग से (रूप सौन्दर्य के) मधुर से मधुर विशाल वैभव वाले, कीर्ति रूपी अमृत-सागर बहते रहते हैं; करोड़ों चन्द्रमाओं को लज्जित करने वाला जिनका 'श्रीमुख' मद से भरे चंचल नेत्रों से युक्त है; अद्भुत सुकुमारता और सुन्दरता भरा दिव्य वपु है; उन श्रीराधा की प्रेमरस भरी, आनन्द की निर्झरणी केलि-सरिता के प्रेमरसमय प्रवाह में क्या मैं कभी अवगाहन करूँगी ?

मत्कण्ठे किं नखरशिखया दैत्यराजोऽस्मि नाहम्
मैवं पीडां कुरु कुचतटे पूतना नाहमस्मि ।
इत्थं कीरैरनुकृतवचः प्रेयसा सङ्गतायाः
प्रातः श्रोष्ये तव सखि कदा केलिकुञ्जे मृजन्ती ॥१६३॥

कुञ्जस्थ 'कीर-वचन' श्रवणेच्छा –

मेरे कण्ठ में नख के अग्रभाग से क्यों पीड़ा देते हो, मैं कोई दैत्यराज (तृणावर्त) नहीं हूँ। अरे, मेरे कुच-मण्डल में पीड़ा मत करो, मैं पूतना नहीं हूँ।

हे सखी ! प्रियतम के समागम में तुम्हारे तोताओं से अनुकरण किये हुए वचनों को मैं प्रातःकाल केलि-कुञ्जों का मार्जन करती हुई कब सुनूँगी ?

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु स्फुरतु मे राधापदाब्जच्छटा
वैकुण्ठे नरकेथवा मम गतिर्नान्यास्तु राधां विना ।
राधाकेलिकथा सुधाम्बुधिमहावीचीभिरान्दोलितम्
कालिन्दीतटकुञ्जमन्दिरवरालिन्दे मनो विन्दतु ॥१६४॥

अनन्यता की भावना –

श्रीराधा की केलि-कथा-समुद्र की उत्ताल तरंगों में झकोरा लेता मेरा मन श्रीयमुना के किनारे स्थित लतामन्दिर के प्राङ्गण में ही आनन्दित हो । जागते, सोते और सुषुप्ति (गहरी नींद) में भी श्रीराधारानी के चरणकमलों की छटा ही मेरे मन में स्फुरित होती रहे, उसके बिना वैकुण्ठ अथवा नरक में भी मेरे मन की 'श्रीराधा' के बिना अन्य गति न हो ।

अलिन्दे कालिन्दीतटनवलतामन्दिरगते
रतामर्दोद्भूतश्रमजलभरापूर्णवपुषोः ।
सुखस्पर्शेनामीलितनयनयोः शीतमतुलम्
कदा कुर्यां संवीजनमहह राधामुरभिदोः ॥१६५॥

सेवा की भावना –

अहो ! यमुना तटवर्ती नए लता मन्दिर के प्राङ्गण में रति-क्रीड़ा-मर्दन से प्रकट हुई श्रम-जल-धारा से परिपूर्ण वपुवाले और स्पर्श-आनन्द से कुछ मुंदे हुए नयन वाले श्रीराधा-माधव की जोड़ी को मैं कब अनुपम शीतल पंखा झरूँगी ?

क्षणं मधुरगानतः क्षणममन्दहिन्दोलतः
क्षणं कुसुमवायुतः सुरतकेलिशिल्पैः क्षणम् ।
अहो मधुरसद्रसप्रणयकेलिवृन्दावने
विदग्धवरनागरी रसिकशेखरौ खेलतः ॥१६६॥

विहार की नित्यता –

आश्चर्य है मधुर एवं सद्रस से परिपूर्ण प्रेमक्रीडा से मनोरम वृन्दावन में चतुरशिरोमणि श्रीराधिका एवं रसिकसिरमौर श्रीकृष्ण क्षणभर में मधुरगान के द्वारा, किसी क्षण में झूलनोत्सव में लम्बे झोटा लेते हुए, किसी क्षण पुष्पों से सुगन्धित वायु का सेवन करते हुए और किसी क्षण अद्भुत सुरत-केलि करते हुए विहार कर रहे हैं ।

अद्य श्यामकिशोरमौलिरहह प्राप्तो रजन्या मुखे
नीत्वा तां करयोः प्रगृह्य सहसा नीपाटवीं प्राविशत् ।
श्रोष्ये तल्पमिलन्महारतिभरे प्राप्तेपि शीत्कारितम्
तद्वीचीसुखतर्जनं किमु हरेः स्वश्रोत्ररन्ध्राश्रितम् ॥१६७॥

विहार-चातुरी –

अरे ! आज संध्या समय अचानक ‘श्याम’ जो किशोरशिरोमणि हैं, वे श्रीराधा की युगल भुजाओं को पकड़कर कदम्बवन में प्रवेश कर गये; वहाँ क्रीड़ा-शय्या पर मिलने से जो महान-रति का प्रवाह चला, उसके बढ़ने पर श्रीलालजी के श्रवण-रंध्रों की आश्रय रूप ‘श्रीराधा की सुखभरी लहरों के गर्जन के समान शीत्कार’ को क्या मैं निकट से सुनूँगी ?

श्रीमद्राधे त्वमथ मधुरं श्रीयशोदाकुमारे
प्राप्ते कैशोरकमतिरसाद् वल्गसे साधुयोगम् ।

इत्थं बाले महसि कथया नित्यलीलावयःश्रीः
जातावेशा प्रकटसहजा किं नु दृश्या किशोरी ॥१६८॥

'कैशोर-प्राकट्य' के दर्शन की इच्छा –

"हे श्रीमति राधे ! यशोदानन्दन श्रीकृष्ण किशोर अवस्था को प्राप्त हो चुके हैं और आप भी प्रेम की अधिकता के कारण उसी मधुर सुन्दर योग को प्राप्त हो गई हैं ।" ऐसा कहते ही उनका नित्यलीला के अनुकूल किशोर-आवेश प्रकट हुआ; उनकी किशोरावस्था की प्राप्ति क्या हमें दृष्टिगोचर होगी ?

एकं काञ्चनचम्पकच्छवि परं नीलाम्बुदश्यामलम्
कन्दर्पोत्तरलं तथैकमपरं नैवानुकूलं बहिः ।
किं चैकं बहुमानभङ्गि रसवच्चाटूनि कुर्वत्परम्
वीक्षे क्रीडनिकुञ्जसीम्नि तदहो द्वन्द्वं महामोहनम् ॥१६९॥

युगल का नित्य विहार –

एक (श्रीराधा) छवि 'सुनहरी चम्पा' की तरह है और दूसरी छवि 'सजल व सघन नील मेघवत्' है । एक (श्याम) कामज्वर से चञ्चल है और दूसरा भीतर से अनुकूल होकर भी बाहर से प्रतिकूल है (वामागति को प्राप्त है) । एक मानभरी भङ्गिमाओं से भरा हुआ है (मानिनी राधा) तो दूसरा रस भरे वचनों से चाटुकारी-परायण है (कृष्ण) । अहो ! क्या मैं क्रीडा-निकुञ्ज की सीमा में उन महामोहन युगल (श्रीराधा-मोहन) को देखूँगी ?

विचित्ररतिविक्रमं दधदनुक्रमाद् आकुलम्
महामदनवेगतो निभृतमञ्जुकुञ्जोदरे ।
अहो विनिमयन् नवं किमपि नीलपीतं पटम्
मिथो मिलितमद्भुतं जयति पीतनीलं महः ॥१७०॥

युगल की रति-क्रीड़ा –

एकान्त कुञ्ज के भीतरी भाग में काम के महावेग से व्याकुल दोनों क्रम से (एक के बाद दूसरा) विचित्र रति-पराक्रम को धारण करते हुए किसी अनिर्वचनीय ढंग से नीलाम्बर का विनिमय भी करते हैं; इस प्रकार निभृत-निकुञ्ज-मन्दिर में अद्भुत अलौकिक रूप से मिली हुई कोई अनिर्वचनीय 'नीली और पीली ज्योति' विजय को प्राप्त हो रही हैं।

करे कमलमद्भुतं भ्रमयतोर्मिथोंऽसार्पित –
स्फुरत्पुलकदोर्लतायुगलयोः स्मरोन्मत्तयोः ।
सहासरसपेशलं मदकरीन्द्रभङ्गीशतैर् –
गतिं रसिकयोर्द्वयोः स्मरत चारुवृन्दावने ॥ १७१ ॥

नित्यविहार में युगल –

रमणीय वृन्दावन में अद्भुत कमल को अद्भुत प्रकार से घुमाते हुए, परस्पर स्कंधों पर रोमाञ्च भरी भुज-लताओं को अर्पित किए हुए, काम से मतवाले श्रीवन के विहारी रसिकयुगल हँसी से सुन्दर बने हुए, उनकी सैकड़ों मत्त गजराजों की मद भरी भङ्गिमाओं के समान दोनों रसिकों की गति का हे मेरे मन ! तू स्मरण कर ।

खेलन्मुग्धाक्षिमीनस्फुरदधरमणीविद्रुमश्रोणिभार –
द्वीपायामोत्तरङ्गस्मरकलभकटाटोपवक्षोरुहायाः ।
गम्भीरावर्तनाभेर्बहलहरिमहाप्रेमपीयूषसिन्धोः
श्रीराधायाः पदाम्भोरुहपरिचरणे योग्यतामेव मृग्ये ॥ १७२ ॥

'सेवा-योग्यता' की चाह –

जिनके भोले नेत्र ही दो चञ्चल मीन हैं, जिनके मूंगामणि की तरह अधर चमक रहे हैं, जिनके पृथु नितम्ब मण्डल ही द्वीप हैं, उस द्वीप-विस्तार के तरंगायित

प्रदेश में काम रूपी हाथी के बच्चों के गण्डस्थल के समान दोनों स्तनमण्डल हैं; जिनकी नाभि गम्भीर भँवर के समान है; ऐसी श्रीकृष्ण की महाप्रेमामृतसिन्धु रूपा 'श्रीराधा' के दोनों चरणकमलों की सेवा की योग्यता मैं चाहती हूँ ।

विच्छेदाभासमानादहह निमिषतो गात्रविस्रंसनादौ
चंचत्कल्पाग्निकोटिज्वलितमिव भवेद् बाह्यमभ्यन्तरं च ।
गाढस्नेहानुबन्धग्रथितमिव ययोरद्भुतप्रेममूर्त्योः
श्रीराधामाधवाख्यं परमिह मधुरं तद्वयं धाम जाने ॥ १७३ ॥

विरहशून्य एकात्मभाव –

आश्चर्य है केवल देह से विलग होने के निमिषमात्र वियोग के आभास से ही जिनके मन और शरीर में प्रकाशित करोड़ों प्रलय की अग्नि-ज्वालायें धधक उठती हैं । बस, गाढ़ स्नेह के बंधन से गुँथे हुए अद्भुत प्रेमविग्रह 'श्रीराधा-माधव' नाम वाले युगल को ही इस संसार में अपना परम मधुर आश्रय जानती हूँ ।

कदा रत्युन्मुक्तं कचभरमहं संयमयिता
कदा वा संधास्ये त्रुटितनवमुक्तावलिमपि ।
कदा वा कस्तूर्यास्तिलकमपि भूयो रचयिता
निकुञ्जान्तर्वृत्ते नवरतिरणे यौवनमणेः ॥ १७४ ॥

'अन्तरंग-सेवा' की इच्छा –

कब मैं नव निकुञ्ज में नये रति-रण के बाद युवतिमणि 'श्रीराधा' के उन्मुक्त केशपाश को बाँधूंगी ? उनकी टूटी मुक्तामाला कब पिरोऊँगी और कब कस्तूरी से पुनः तिलक की रचना करूँगी ?

किं ब्रूमोऽन्यत्र कुण्ठीकृतक जनपदे धाम्न्यपि श्रीविकुण्ठे
राधामाधुर्यवेत्ता मधुपतिरथ तन्माधुरीं वेत्ति राधा ।
वृन्दारण्यस्थलीयं परमरससुधामाधुरीणां धुरीणा
तद्वन्द्वं स्वादनीयं सकलमपि ददौ राधिकाकिङ्करीभ्यः ॥१७५॥

'श्रीधाम' महिमा –

(श्रीराधारानी के माधुर्य के अभाव से) अन्यत्र की तो बात क्या, वैकुण्ठधाम भी कुण्ठित हो गया है क्योंकि 'श्रीराधा' की मधुरता को श्रीमाधव ही जानते हैं और 'श्रीमाधव' की मधुरता को केवल श्रीराधा ही जानती हैं तथा इन आस्वादन योग्य युगल को परमरस की अमृतमयी माधुरी में सबसे अग्रगण्य श्रीवृन्दावन की भूमि ने श्रीराधा-किङ्करीगणों को आस्वादन के लिए प्रदान कर दिया है ।

लसद्वदनपङ्कजा नवगभीरनाभिभ्रमा
नितम्बपुलिनोल्लसन्मुखरकाञ्चिकादम्बिनी ।
विशुद्धरसवाहिनी रसिकसिन्धुसङ्गोन्मदा
सदा सुरतरङ्गिणी जयति कापि वृन्दावने ॥१७६॥

रसगंगा 'श्रीराधा' की जय – जिसमें प्रफुल्लित मुख ही कमल है, नयी गम्भीर नाभि ही भँवर है, नितम्ब ही पुलिन है; उस प्रदेश में गूँजती हुई 'कौंधनी' मेघमाला है, जिसमें केवल विशुद्ध प्रेमरस ही बहता रहता है और जो रस-सागर श्रीकृष्ण से संगम करने के लिए उन्मत्त बह रही हैं; श्रीवृन्दावन में बहने वाली उस अनिर्वचनीया रस-गंगा की सदा जय हो ।

अनङ्गनवरङ्गिणीरसतरङ्गिणीसङ्गताम्
दधत् सुखसुधामये स्वतनुनीरधौ राधिकाम् ।

अहो मधुपकाकलीमधुरमाधवीमण्डपे
स्मरक्षुभितमेधते सुरतसीधुमत्तं महः ॥ १७७॥

श्रीराधारस-तरंगिणी –

आश्चर्य है ! भौरों के मंद गुञ्जन से भरे मधुर माधवीमण्डप में सुरतामृत से मत्त दिव्य 'नील-ज्योति' काम-पीड़ा से क्षुब्ध होकर भी बढ़ रही है; उस दिव्य ज्योति ने अपने सुख भरे अमृतमय शरीर-समुद्र में नए अनङ्गों को भी अनुरञ्जित करने वाली रस-तरङ्गिणी 'श्रीराधा' को धारण कर रखा है ।

रोमालीमिहिरात्मजा सुललिते बन्धूकबन्धुप्रभा
सर्वाङ्गे स्फुटचम्पकच्छविरहो नाभीसरःशोभना ।
वक्षोजस्तवका लसद्भुजलता शिञ्जापतच्छुङ्कृतिः
श्रीराधा हरते मनो मधुपतेरन्येव वृन्दाटवी ॥ १७८॥

धामी ही धाम है –

जिनकी रोमावली ही सूर्यपुत्री यमुनावत् है, जिनकी अङ्गकान्ति बन्धूक-बन्धु (पुष्प विशेष) के समान है, जिनके सुन्दर सभी ललित अङ्गों में सुनहरी चम्पा की छवि प्रकट हो रही है जो नाभि-सरोवर के कारण दर्शनीया बन गयी है; जिनके श्रीस्तन ही पुष्प-गुच्छ हैं, शोभित भुजा ही लता है, आभूषणों का शब्द ही पक्षियों की झंकार है; ऐसी 'श्रीराधा' दूसरी वृन्दाटवी की भाँति माधव के मन को हर रहीं हैं ।

राधामाधवयोर्विचित्रसुरतारम्भे निकुञ्जोदर –
स्रस्तप्रस्तरसङ्गतैर्वपुरलङ्कुर्वेऽङ्गरागैः कदा ।
तत्रैव त्रुटिताः स्रजो निपतिताः सन्धाय भूयः कदा
कण्ठे धारयितास्मि मार्जनकृते प्रातः प्रविष्टास्म्यहम् ॥ १७९॥

सुरतांत की सेवा –

प्रातःकाल निकुञ्ज-मन्दिर के मध्य भाग को सम्मार्जित करने के लिए प्रवेश कर श्रीराधामाधव की विचित्र लीला के आरम्भ में बिखरी हुई शय्या में लगे प्रसादी 'अङ्गराग' से कब अपने शरीर को सजाऊँगी और वहीं टूट कर गिरी हुई 'पुष्प-मालाओं' को फिर से गूँथकर कब अपने कण्ठ में पहनूँगी ?

श्लोकान्प्रेष्ठयशोऽङ्कितान्गृहशुकानध्यापयेत्कर्हिचिद्
गुञ्जामञ्जुलहारबर्हमुकुटं निर्माति काले क्वचित् ।
आलिख्य प्रियमूर्तिमाकुलकुचौ सङ्घट्टयेद् वा कदाप्य् –
एवं व्यापृतिभिर्दिनं नयति मे राधा प्रियस्वामिनी ॥१८०॥

विरह-लीला –

कभी निकुञ्ज-भवन के तोतों को प्रियतम के यश का गान करने वाले श्लोकों को पढ़ाती हैं, कभी गुञ्जाओं से सुन्दर हार और मोरमुकुट बनाती हैं, कभी प्रियतम की प्रियमूर्ति का चित्रण करके उसे अपने सटे हुए दोनों स्तनों में लगा लेती हैं; इस प्रकार के क्रिया-कलापों से मेरी स्वामिनी 'श्रीराधा' अपने वियोग भरे दिन बिताती हैं ।

प्रेयःसङ्गसुधासदानुभविनी भूयोभवद्भाविनी
लीलापञ्चमरागिणी रतिकलाभङ्गीशतोद्भाविनी ।
कारुण्यद्रवभाविनी कटितटे काञ्चीकलाराविणी
राधैव गतिर्ममास्तु पदयोः प्रेमामृतस्राविणी ॥१८१॥

इष्ट में सम्पूर्ण समर्पण –

जो सदा ही प्रियतम के मिलन सुख का आस्वादन करती हैं, जो पुनः होने वाले संगम की कामना करती हैं; जो लीलाकाल में राग 'पंचम' गाती हैं । जो रति-कला की सैकड़ों भङ्गिमाओं की भावना में लगी रहती हैं, जो करुणरस को प्रकट करने

वाली हैं। जो कटिप्रदेश में करधनी की कलरव वाली हैं, जिनके श्रीचरणों से प्रेमामृत झरता रहता है; वे 'श्रीराधा' ही मेरी एकमात्र गति हैं।

कोटीन्दुच्छविहासिनी नवसुधासम्भारसम्भाषिणी
वक्षोजद्वितयेन हेमकलशश्रीगर्वनिर्वासिनी।
चित्रग्रामनिवासिनी नवनवप्रेमोत्सवोल्लासिनी
वृन्दारण्यविलासिनी किमुरहोभूयाद्धृदुल्लासिनी ॥१८२॥

स्वरूप-वर्णनपूर्वक 'श्रीजी' से सविश्वास आशा –

जो करोड़ों चन्द्रमाओं की छवि का उपहास करने वाली हैं, जिनका सम्भाषण नए अमृत-सुधासमूह से भरा हुआ है; जो अपने दोनों श्रीस्तनों से स्वर्णकलशों की शोभा का तिरस्कार करती हैं; प्रेम के उत्सवों से उल्लास भरी, चित्रग्राम (वृहत्सानु बरसाना) में निवास करने वाली हैं; वे श्रीवृन्दावनविलासिनी (श्रीराधा) क्या कभी मेरे लिए हृदय को उल्लास देने वाली होंगी ?

कदा गोविन्दाराधनललितताम्बूलशकलम्
मुदा स्वादं स्वादं पुलकिततनुर्मे प्रियसखी।
दुकूलेनोन्मीलन्नवकमलकिञ्जल्करुचिना
निवीताङ्गी सङ्गीतकनिजकलाः शिक्षयति माम् ॥१८३॥

संगीत-शिक्षिका 'श्रीराधा' –

श्रीगोविन्द की प्रसन्नता हेतु उनके द्वारा अर्पित सुन्दर पान-बीड़ी का आस्वादन लेने से जिनका शरीर बार-बार रोमाञ्चित हो रहा है, जिन्होंने नवीन कमल के केशर के रंग वाला (पीला) दुपट्टा अपने श्रीअङ्ग में धारण कर रखा है; वह हमारी प्रिय सखी 'श्रीराधा' कब अपनी संगीत-कलाओं की शिक्षा मुझे देंगी ?

लसद्दशनमौक्तिकप्रवरकान्तिपूरस्फुरन् –
मनोज्ञनवपल्लवाधरमणिच्छटासुन्दरम् ।
चरन्मकरकुण्डलं चकितचारुनेत्राञ्चलम्
स्मरामि तव राधिके वदनमण्डलं निर्मलम् ॥ १८४॥

'श्रीराधामुखमण्डल' स्मरण –

हे श्रीराधे ! मैं आपके उस निर्मल वदन-मण्डल का स्मरण करती हूँ, जिसमें शोभित दन्तपंक्ति मोतियों की उज्ज्वल कान्ति से भरी हुई है, अधर-पल्लव बड़े चित्तहारी हैं, जो दीप्तिमान विद्रुममणि (मूंगा) की छटा से भी अधिक सुन्दर हैं । कपोलों पर चञ्चल मकर-कुण्डल और मुखमण्डल पर चकित, सुन्दर नेत्र की कोरों की अद्भुत शोभा है ।

चलत्कुटिलकुन्तलं तिलकशोभिभालस्थलम्
तिलप्रसवनासिकापुटविराजिमुक्ताफलम् ।
कलङ्करहितामृतच्छविसमुज्ज्वलं राधिके
तवातिरतिपेशलं वदनमण्डलं भावये ॥ १८५॥

'श्रीमुख' की भावना –

हे श्रीराधे ! चञ्चल घुँघराली लट वाली, तिलक से शोभित ललाटवाली, नासा के अग्रभाग में तिल के फूल भाँति शोभित मोती वाली, कलंक रहित अमृतच्छवि से जो उज्ज्वल है, आपके उस रसीले और सुन्दर 'मुखमण्डल' की मैं भावना करती हूँ ।

पूर्णप्रेमामृतरससमुल्लाससौभाग्यसारम्
कुञ्जे कुञ्जे नवरतिकलाकौतुकेनात्तकेलि ।

उत्फुल्लेन्दीवरकनकयोः कान्तिचौरं किशोरम्
ज्योतिर्द्वन्द्वं किमपि परमानन्दकन्दं चकास्ति ॥ १८६ ॥

'युगल-ज्योति' भावना –

'युगल-ज्योति' प्रेमामृतरस की पूर्णता के उल्लासपूर्ण सुन्दरता की भी सार रूपा है, जिन्होंने नई-नई रति-कला के कौतुकों से कुञ्जों में केलि करना स्वीकार किया है; जो खिले हुए नीले कमल और सोने की कान्ति को भी हरण करने वाली है; वह अवर्णनीय परमानन्द का मूल किशोर-आकार वाली 'युगल-ज्योति' अद्भुत शोभा को प्राप्त हो रही है ।

ययोन्मीलत्केलीविलसितकटाक्षैककलया
कृतो बन्दी वृन्दाविपिनकलभेन्द्रो मदकलः ।
जडीभूतः क्रीडामृग इव यदाज्ञालवकृते
कृती नः सा राधा शिथिलयतु साधारणगतिम् ॥ १८७॥

कृपा से भव-निवृत्ति की याचना –

जिन्होंने विकसित क्रीड़ा-विलास में उत्पन्न कटाक्षों की एक ही कला से श्रीवृन्दावन के मद भरे हुए किशोर गजराज (श्रीकृष्ण) को बंदी बना लिया है; जो अति नागर होते हुए भी उनकी सांकेतिक आज्ञा के वश में होकर क्रीड़ामृग (खिलौना) की भाँति जड़ हो जाते हैं; वही 'श्रीराधा' मेरी सांसारिक गति को गतिहीन करें ।

श्रीगोपेन्द्रकुमारमोहनमहाविद्ये स्फुरन्माधुरी –
सारस्फाररसाम्बुराशिसहजप्रस्यन्दिनेत्राञ्चले ।
कारुण्यार्द्रकटाक्षभङ्गिमधुरस्मेराननाम्भोरुहे
हा हा स्वामिनि राधिके मयि कृपादृष्टिं मनाङ्निक्षिप ॥ १८८॥

कृपा-कोर की याचना –

हे श्रीगोपराज कुमार को मोहित करने वाली महाविद्या ! दीप्तिमती माधुरी के सार का भी विस्तार करने वाले रस-समुद्र का सहज प्रवाह करने वाले नेत्रकमल वाली हे प्रिये ! "जिनकी कटाक्ष भङ्गिमाएँ करुणा से भीगी हुई हैं; जिनका 'मुखकमल' मीठी मुस्कुराहट से भरा रहता है" हे स्वामिनि श्रीराधे ! हा ऽऽऽ हा ऽऽऽ (कष्ट व्यंजक संबोधन) मुझ पर अपनी थोड़ी-सी कृपादृष्टि करें ।

ओष्ठप्रान्तोच्छलितदयितोद्गीर्णताम्बूलरागा
रागानुच्चैर्निजरचितया चित्रभङ्ग्योन्नयन्ती ।
तिर्यग्ग्रीवा रुचिररुचिरोदञ्चदाकुञ्चितभ्रूः
प्रेयःपार्श्वे विपुलपुलकैर्मण्डिता भाति राधा ॥१८९॥

संगीत-शिक्षिका की शोभा –

जो प्रियतम (कृष्ण) को देने के लिए अपना चर्वित ताम्बूल अधरों तक ला चुकी हैं, जिससे ओष्ठ-प्रान्त में ललायी प्रकाशित हो रही है । जो विचित्र भङ्गिमाओं के साथ अपने द्वारा रचित विभिन्न रागों का उच्च स्वर से गान कर रही हैं, इससे ग्रीवा कुछ तिरछी हो रही है और दोनों सुन्दर भौंहें कुछ मुडी हुई ऊपर की ओर चढ़ रही हैं । मधुर-रस सिद्धि के आनन्द से अधिक रोमाञ्चित होकर 'श्रीराधा' अपने प्रियतम के पास में शोभित हो रही हैं ।

किं रे धूर्त्तप्रवर निकटं यासि नः प्राणसख्या
नूनं बाला कुचतटकरस्पर्शमात्राद् विमुह्येत् ।
इत्थं राधे पथि पथि रसान् नागरं तेऽनुलग्नम्
क्षिप्त्वा भङ्ग्या हृदयमुभयोः कर्हि संमोहयिष्ये ॥१९०॥

सखी का अधिकार –

श्रीकृष्ण को भी व्यंग्य में लताड़ती है – "क्यों रे धूर्त-शिरोमणि, हमारी प्राण प्यारी सखी के पास क्यों आते हो, दूर ही रहो । तुम नहीं जानते हो कि सुकुमारी बाला श्रीस्तनों के स्पर्शमात्र से ही तुम मूर्च्छित हो जाओगे ।" हे श्रीराधे ! इस प्रकार की अपनी वाणी की चतुरता के द्वारा मैं चतुर रसिक को दूर हटा करके दोनों के हृदय को कब भलीभाँति आनन्दित करूँगी ?

कदा वा राधायाः पदकमलमायोज्य हृदये
दयेशं निःशेषं नियतमिह जह्यामुपविधिम् ।
कदा वा गोविन्दः सकलसुखदः प्रेमकरणाद्
अनन्ये धन्ये वै स्वयमुपनयेत स्मरकलाम् ॥१९१॥

श्रीकृष्ण से काम-कला की शिक्षा –

मैं कब श्रीराधा के दयापूर्ण चरणकमलों को हृदय में धारण करके इस संसार में नियमित वेद-विधियों को पूर्णतः छोड़ूँगी और सभी सुखों को देने वाले 'गोविन्द' काम-भावोद्दीपक (गायन-वादन आदि) कलाओं की शिक्षा 'राधाजी के प्रति अनन्यता से धन्य मुझ दासी' को निश्चित ही देंगे ।

कदा वा प्रोद्दामस्मरसमरसंरम्भरभस –
प्ररूढस्वेदाम्भःप्लुतलुलितचित्राखिलतनू ।
गतौ कुञ्जद्वारे सुखमरुति संवीज्य परया
मुदाहं श्रीराधारसिकतिलकौ स्यां सुकृतिनी ॥१९२॥

सेवा का स्वरूप –

उत्कट सुरत-संग्राम में आविष्ट वेग से उत्पन्न स्वेद से जिनके वपु गीले और

शिथिल से चित्रित हो रहे हैं; उन श्रीराधा और रसिकशेखर श्रीकृष्ण को 'जो कुञ्ज में स्थित हैं' मैं कब हर्ष में भरकर पंखा कर पुण्यशालिनी बनूँगी ?

मिथःप्रेमावेशाद् घनपुलकदोर्वल्लिरचित –
प्रगाढाश्लेषेणोत्सवरसभरोन्मीलितदृशौ ।
निकुञ्जक्लृप्ते वै नवकुसुमतल्पेऽभिशयितौ
कदा पत्संवाहादिभिरहमधीशौ नु सुखये ॥१९३॥

चरण-सेवा की अभिलाषा –

'निकुञ्ज-भवन के भीतर स्थित नए-नए पुष्पों से रची हुई शय्या पर शयन करते हुए, दोनों ही एक-दूसरे के प्रेमावेश से उत्पन्न घनीभूत पुलकावली युक्त भुजाओं से भरे हुए, गाढ़ आलिङ्गन के उत्सव-रस से युक्त, आनन्द से मुँदी हुई दृष्टि वाले दोनों अधीश्वरों' को कब चरण-दबाने की सेवा से सुखी करूँगी ?

मदारुणविलोचनं कनकदर्पकामोचनम्
महाप्रणयमाधुरीरसविलासनित्योत्सुकम् ।
लसन्नववयःश्रिया ललितभङ्गिलीलामयम्
हृदा तदहमुद्वहे किमपि हेमगौरं महः ॥१९४॥

'गौर-ज्योति' दर्शन –

जिनके दोनों नेत्र मद से कुछ लाल हो रहे हैं, जिनकी 'गौरता' कुन्दन की भी मदमोचनी है; जो महान प्रेम-माधुरी से युक्त रस-विलास के लिए सदा उत्कण्ठित रहने वाली हैं, जिनकी उल्लास भरी कैशोर-शोभा अत्यन्त सुन्दर और क्रीड़ामयी है; उन अनिर्वचनीय सुनहरी 'गौर-ज्योति' को मैं हृदय में धारण करती हूँ ।

मदाघूर्णन्नेत्रं नवरतिरसावेशविवशो –
ल्लसद्गात्रं प्राणप्रणयपरिपाट्यां परतरम् ।
मिथोगाढाश्लेषाद् वलयमिव जातं मरकत –
द्रुतस्वर्णच्छायं स्फुरतु मिथुनं तन्मम हृदि ॥१९५॥

युगल का शय्या-विहार –

मद से झूमते हुए नेत्र वाले, नये प्रेमावेश से जो विवश और प्रफुल्लित हो रहे हैं; जो प्राणों से भी प्रिय प्रणय-परिपाटी में परम श्रेष्ठ हैं । पारस्परिक आलिङ्गन से कङ्कणाकार बने हुए इन्द्रनीलमणि 'श्याम' और पिघले हुए सोने की छवि वाली 'गौर' दोनों मेरे हृदय में स्फुरित हों ।

परस्परं प्रेमरसे निमग्नम् अशेषसम्मोहनरूपकेलि ।
वृन्दावनान्तर्नवकुञ्जगेहे तन्नीलपीतं मिथुनं चकास्ति ॥१९६॥

युगल रस –

परस्पर के प्रेमरस में निमग्न, सुन्दरता भरी क्रीड़ाओं से मोहित करने वाले श्याम एवं गौर युगल श्रीवृन्दावन के नव निकुञ्ज-भवनों में प्रकाशित हैं ।

आशास्य दास्यं वृषभानुजाया –
स्तीरे समध्यास्य च भानुजायाः ।
कदा नु वृन्दावनकुञ्जवीथी –
ष्वहं नु राधे ह्यतिथिर्भवेयम् ॥१९७॥

'किङ्करी भाव' की सफलता –

सूर्यपुत्री श्रीयमुना के तट पर 'वृषभानुनन्दिनी के दास्य-भाव को धारण करके' मैं श्रीमद्वृन्दावन की कुञ्ज-गलियों में क्या कभी अभ्यागत होऊँगी ?

कालिन्दीतटकुञ्जे पुञ्जीभूतं रसामृतं किमपि ।
अद्भुतकेलिनिधानं निरवधि राधाभिधानमुल्लसति ॥१९८॥

श्रीराधारसामृत –

श्रीयमुना तट पर स्थित कुञ्ज में अवर्णनीय केलि का आकर 'श्रीराधा' नाम वाला अद्भुत रसामृत उमड़कर बह रहा है ।

प्रीतिरेव मूर्तिमती रससिन्धोः सारसम्पदिव विमला ।
वैदग्धीनां हृदयं काचन वृन्दावनाधिकारिणी जयति ॥१९९॥

वृन्दावनरानी का वर्णन –

मूर्तिमती प्रीतिस्वरूपा, रस-समुद्र की सार-सम्पत्ति एवं चतुरशिरोमणि सखियों की हृदयरूपा कोई 'श्रीवृन्दावन की स्वामिनी' विजय को प्राप्त हो रही हैं ।

रसघनमोहनमूर्तिं विचित्रकेलिमहोत्सवोल्लसितम् ।
राधाचरणविलोडितरुचिरशिखण्डं हरिं वन्दे ॥२००॥

निकुञ्जविहारी का स्वरूप –

जो घनीभूत रस की मोहनी मूर्ति हैं तथा अद्भुत केलि-महोत्सव से अलङ्कृत हैं तथा जिनका मनोहर मयूरपिच्छ युक्त मुकुट 'वृषभानुनन्दिनी के चरणों' में लोटता है; ऐसे श्रीकृष्ण की मैं वन्दना करती हूँ ।

कदा गायं गायं मधुरमधुरीत्या मधुभिदश् –
चरित्राणि स्फारामृतरसविचित्राणि बहुशः ।
मृजन्ती तत्केलीभवनमभिरामं मलयज –
च्छटाभिः सिञ्चन्ती रसहृदनिमग्नास्मि भविता ॥२०१॥

सेवा में गान युक्त भावना –

'मधुसूदन' के घनीभूत अमृत भरे इस पूर्ण विचित्र और अनन्त चरित्रों को मधुर से मधुर शैली से पुनः पुनः अनेक प्रकार से गाती हुई, उनके सुन्दर केलि-भवनों का मार्जन करती हुई, चन्दन और पुष्प रस से सींचती हुई, मैं कब रस-सरोवर में निमग्न हो जाऊँगी ?

उदञ्चद्रोमाञ्चप्रचयखचितां वेपथुमतीम्
दधानां श्रीराधामतिमधुरलीलामयतनुम् ।
कदा वा कस्तूर्या किमपि रचयन्त्येव कुचयोर् –
विचित्रां पत्रालीमहमहह वीक्षे सुकृतिनी ॥२०२॥

'राधारानी के स्वरूप' का वर्णन –

कस्तूरी से अपने स्तनों पर अवर्णनीय विचित्र पत्रावली बनाने से पुण्यशालिनी होकर मैं कब पुलकित रोमावली से शोभित, कम्पित, अत्यन्त मधुर लीलामय तनु धारण करने वाली 'श्रीराधा' का दर्शन करूँगी ?

क्षणं सीत्कुर्वन्ती क्षणमथ महावेपथुमती
क्षणं श्याम श्यामेत्यमुमभिलपन्ती पुलकिता ।
महाप्रेमा कापि प्रमदमदनोद्दामरसदा
सदानन्दा मूर्तिर्जयति वृषभानोः कुलमणिः ॥२०३॥

प्रेम-वैचित्री –

अवर्णनीय कोई महाराज वृषभानु के कुल की मणि रूपा 'किशोरीजी' की जय हो; जो सदा आनन्द की मूर्ति हैं, महाप्रेम रूपिणी हैं और प्रकृष्ट मद वाले कामदेव को भी श्रेष्ठतम रस देने वाली हैं । प्रेम-वैचित्री के कारण कभी सीत्कार करने

लगती हैं, किसी समय में अत्यन्त कम्पित हो जाती हैं और किसी क्षण में 'हे श्याम ! हे श्याम !!' ऐसा प्रलाप करके पुलकित होने लगती हैं ।

यस्याः प्रेमघनाकृतेः पदनखज्योत्स्नाभरस्नापित –
स्वान्तानां समुदेति कापि सरसा भक्तिश्चमत्कारिणी ।
सा मे गोकुल भूपनन्दनमनश्चोरी किशोरी कदा
दास्यं दास्यति सर्ववेदशिरसां यत्तद्रहस्यं परम् ॥२०४॥

सेवा-प्राप्ति की तीव्र इच्छा –

जिन घनीभूत प्रेममय किशोरी के चरणों के नखों की चाँदनी के प्रवाह में स्नान करने से अंतःकरण में कोई अवर्णनीय चमत्कारिणी भक्ति का उदय होता है । गोकुल राजकुमार के भी चित्त को हरने वाली वे 'किशोरी' कब मुझे वेदशिरोमणि उपनिषदों का परम रहस्यरूप अपना दास्य देंगी ?

कामं तूलिकया करेण हरिणा यालक्तकैरङ्किता
नानाकेलिविदग्धगोपरमणीवृन्दे तथा वन्दिता ।
या सङ्गुप्ततया तथोपनिषदां हृद्येव विद्योतते
सा राधाचरणद्वयी मम गतिर्लास्यैकलीलामयी ॥२०५॥

सर्वोच्च लक्ष्य की अनन्यता –

श्रीकृष्ण के करकमलों द्वारा तूलिका से जिसमें अनुकूल चित्रों की रचना की गई, जो अनेक क्रीड़ा-चतुर गोपियों के समूह में श्रीकृष्ण से वन्दित हैं; जो वेद शिरोरूप उपनिषदों के हृदय में गुप्त-भाव-रीति से विद्यमान हैं; एकमात्र वही लास्यगति से लीलामय नृत्य करने वाले 'श्रीराधा' के युगलचरण मेरी गति हैं ।

सान्द्रप्रेमरसौघवर्षिणि नवोन्मीलन्महामाधुरी –
साम्राज्यैकधुरीणकेलिविभवत्कारुण्यकल्लोलिनि ।
श्रीवृन्दावनचन्द्रचित्तहरिणीबन्धस्फुरद्वागुरे
श्रीराधे नवकुञ्जनागरि तव क्रीतास्मि दास्योत्सवैः ॥२०६॥

श्रीजी के चरणों की अनन्यता –

हे घनीभूत प्रेमरस प्रवाह को बरसाने वाली ! हे नवीन-विकास से भरी महामाधुरी के साम्राज्य की सर्वश्रेष्ठ केलि (श्रृंगार केलि) के वैभव से युक्त करुणा की सरिता ! हे वृन्दावनचन्द्र के चित्त को हरण करने वाली स्फुरित बंधन रूपा (रस्सी या बँधनी) ! हे नये कुञ्जों की चतुर नायिके ! हे श्रीराधे ! आपके दास्य के 'भावोत्सवों में' मैं बिक चुकी हूँ ।

स्वेदापूरः कुसुमचयनैर्दूरतः कण्टकाङ्को
वक्षोजेऽस्यास्तिलकविलयो हन्त घर्माम्भसैव ।
ओष्ठः सख्या हिमपवनतः सव्रणो राधिके ते
क्रूरास्वेवं स्वघटितमहो गोपये प्रेष्ठसङ्गम् ॥२०७॥

दास्य भाव की विदग्धता –

प्रिय सखी श्रीराधाजी के शरीर में पसीना दूर से पुष्प-चयन के कारण है (रति-श्रम से नहीं) तथा स्तनों पर कंटकों से चिह्न (व्रण) हो गया है (नख-क्षत से नहीं) और इनका तिलक पसीने से ही धुल गया है (रति-क्रीडा से नहीं) और अधरोष्ठ शीत पवन से व्रणयुक्त हो गया है (दन्त-क्षत से नहीं); हे श्रीराधे ! आपके द्वारा स्वयं किए गए प्रिय संग को क्रूर (अनधिकारिणी) स्त्रियों से इस प्रकार कह कर छिपाऊँगी ।

पातं पातं पदकमलयोः कृष्णभृङ्गेण तस्याः
स्मेरास्येन्दोर्मुकुलितकुचद्वन्द्वहेमारविन्दम् ।
पीत्वा वक्राम्बुजमतिरसन्नूनमन्तः प्रवेष्टुम्
अत्यावेशान् नखरशिखया पाट्यमानं किमीक्षे ॥२०८॥

नित्य विलास की झाँकी –

क्या मैं कभी "प्रियाजी के मुखकमल का मधुपान करके अत्यन्त प्रेमावेश में भरे हुए 'श्रीकृष्ण रूपी मधुकर' को निकुञ्ज-भवन में प्रवेश पाने के लिए बार-बार **श्रीचरणकमलों** में गिरकर प्रार्थना करते हुए और प्रविष्ट होने के बाद मधुरहास्यमयी चन्द्रमुखी (श्रीराधा) के मुकुलित दोनों स्तन रूप स्वर्णकमलों को अपने नख के अग्रभाग से विदीर्ण करते हुए" देखूँगी ?

अहो तेऽमी कुञ्जास्तदनुपमरासस्थलमिदम्
गिरिद्रोणी सैव स्फुरति रतिरङ्गे प्रणयिनी ।
न वीक्षे श्रीराधां हर हर कुतोपीति शतधा
विदीर्येत प्राणेश्वरि मम कदा हन्त हृदयम् ॥२०९॥

कल्याणमयी इच्छा –

"अरे ! बड़े आश्चर्य की बात है ! ये सब वही कुञ्जें हैं ! वही अनुपम रासस्थल है ! वही रतिरंग प्रणयिनी श्रीगोवर्धन की गुहायें हैं ! परन्तु हाय ! हाय !! बहुत बड़ा खेद है कि श्रीराधा के दर्शन नहीं हो रहे हैं ।" हे प्राणेश्वरी ! इस कष्ट से मेरा हृदय सैकड़ों टुकड़ों में खण्डित होकर कब बिखर जाएगा ?

(श्रीवल्लभ आदि आचार्यों ने 'जीवमात्र' को कालियनाग बताया है, जिसकी दसों इन्द्रियाँ मिलकर कालिय के १०० फन बन जाती हैं; इन पर कृष्ण नृत्य करें तो सभी विष-मुक्त हो जायेंगी जो कि 'ब्रजवास' से सम्भव है, उसी प्रक्रिया का यह श्लोक है ।)

इहैवाभूत् कुञ्जे नवरतिकलामोहनतनोर् –
अहो अत्रानृत्यद् दयितसहिता सा रसनिधिः ।
इति स्मारं स्मारं तव चरितपीयूषलहरीम्
कदा स्यां श्रीराधे चकित इह वृन्दावनभुवि ॥२१०॥

धामवास की शैली –

(प्रत्येक कुञ्ज में यही भाव आवे) इसी कुञ्ज (गह्वरवन-कुञ्ज) में मोहनाङ्गी श्रीराधा की नवीन रतिकला की कुशलता प्रकट हुई थी; अहो ! रससागर रूपा (श्रीराधा) ने इसी स्थल (रासमण्डल) पर प्रियतम के साथ नृत्य किया था; इस प्रकार आपके चरितामृत की लहरों का बार-बार स्मरण करती हुई इस 'श्रीवनभूमि में' मैं कब चकित होकर रहूँगी ?

श्रीमद्बिम्बाधरे ते स्फुरति नवसुधामाधुरीसिन्धुकोटिर् –
नेत्रान्तस्ते विकीर्णाद्भुतकुसुमधनुश्चण्डसत्काण्डकोटिः ।
श्रीवक्षोजे तवातिप्रमदरसकलासारसर्वस्वकोटिः
श्रीराधे त्वत्पदाब्जात् स्रवति निरवधिप्रेमपीयूषकोटिः ॥२११॥

श्रीराधा का दिव्य ऐश्वर्य –

हे श्रीराधे ! आपके श्री युक्त अधर बिम्बों से नयी-नयी अमृत माधुरी के करोड़ों सिन्धु प्रकट होते रहते हैं । आपके नयन-कटाक्षों से पुष्पधन्वा कामदेव के करोड़ों अमोघ बाण चलते रहते हैं । आपके श्रीस्तनों में अति उत्तम मदभरी रतिकला का सार सर्वस्व करोड़ों प्रकार से शोभित होता है एवं आपके श्रीचरणकमलों से निरन्तर दिव्य प्रेमामृत झरता रहता है ।

सान्द्रानन्दोन्मदरसघनप्रेमपीयूषमूर्त्तेः
श्रीराधाया अथ मधुपतेः सुप्तयोः कुञ्जतल्पे ।

कुर्वाणाहं मृदुमृदुपदाम्भोजसंवाहनानि
शय्यान्ते किं किमपि पतिता प्राप्ततन्द्रा भवेयम् ॥२१२॥

'तत्सुखी सेवाभाव' में अद्भुत कृपा-प्राप्ति –

'घनीभूत आनन्द के रस की उन्मत्तता से भरे प्रेमामृत मूर्ति श्रीराधा और मधुपति श्रीकृष्ण को कुञ्ज-शय्या पर नींद आने पर' युगल के अति कोमल श्रीचरणकमलों को दबाती हुई शय्या के निकट मैं क्या तन्द्रा प्राप्त होने से लुढ़क पड़ूँगी ?

राधापादारविन्दोच्छलितनवरसप्रेमपीयूषपुञ्जे
कालिन्दीकूलकुञ्जे हृदि कलितमहोदारमाधुर्यभावः ।
श्रीवृन्दारण्यवीथीललितरतिकलानागरीं तां गरीयो
गम्भीरैकानुरागां मनसि परिचरन् विस्मृतान्यः कदा स्याम् ॥२१३॥

सेवाफल 'सर्वविस्मृति' –

यमुना तट पर विद्यमान निकुञ्ज में जो कि श्रीराधा के श्रीचरणकमलों से अंकित एवं निःसृत नवीन-रस-प्रेमामृत का समूह है । 'अत्यन्त उदार भावना से भरा हुआ मेरा हृदय' जिस भावना में 'श्रीवृन्दावन के कुञ्ज की सुन्दर गलियों में ललित कला में चतुर और अतुल गम्भीर अनुराग की एकमात्र स्वामिनी श्रीराधा' की मानसी सेवा करता हुआ मैं अन्य सब कुछ कब भूल जाऊँगा ?

अदृष्ट्वा राधाङ्के निमिषमपि तं नागरमणिम्
तया वा खेलन्तं ललितललितानङ्गकलया ।
कदाहं दुःखाब्धौ सपदि पतिता मूर्च्छितवती
न तामाश्वास्यार्त्तां सुचिरमनुशोचे निजदशाम् ॥२१४॥

विप्रयोग श्रृंगार रस –

नागर शिरोमणि श्रीकृष्ण 'श्रीराधा' के साथ अति सुन्दर काम-कला में रत थे किन्तु निमिषमात्र के लिए स्वामिनी के अंक में उनको न देखकर मूर्च्छित होकर दुःख सागर में सहसा गिरने से मैं 'श्रीप्रियाजी' को धैर्य न बँधाने के कारण अपनी उस विह्वलता की दशा का कब पश्चाताप करूँगी ?

भूयोभूयः कमलनयने किं मुधा वार्यतेऽसौ
वाङ्मात्रेण त्वदनुगमनं न त्यजत्येव धूर्त्तः ।
किञ्चिद् राधे कुरु कुचतटीप्रान्तमस्य म्रदीयश् –
चक्षुर्द्वारा तमनुपतितं चूर्णतामेतु चेतः ॥२१५॥

सम्प्रलम्भ श्रृंगार की पूर्णता –

(वामागति से स्वामिनी से) आप केवल वचनों से ही बार-बार इनको हटा रही हैं किन्तु ये धूर्तशिरोमणि, आपका पीछा किसी प्रकार छोड़ते ही नहीं हैं, अतः आप अपने कुचमंडल का थोड़ा दर्शन करा दें, जिससे इनका कोमल चित्त इनकी आँखों से निकलकर 'स्थूल व गम्भीर कुच-तटप्रान्त' में गिरकर चूर-चूर हो जाए ।

किं वा नस्तैः सुशास्त्रैः किमथ तदुदितैर्वर्त्मभिः सद्गृहीतैर् –
यत्रास्ति प्रेममूर्त्तेर्नहि महिमसुधा नापि भावस्तदीयः ।
किं वा वैकुण्ठलक्ष्म्याप्यहह परमया यत्र मे नास्ति राधा
किन्त्वाशाप्यस्तु वृन्दावनभुवि मधुरा कोटिजन्मान्तरेपि ॥२१६॥

ब्रजवास की तीव्र कामना –

जहाँ प्रेम मूर्ति राधारानी के महिमामृत अथवा उनके भाव का वर्णन नहीं है, उन सुन्दर शास्त्र से हमारा क्या प्रयोजन है अथवा उनका पालन करने वाले साधु-पुरुषों से भी हमें क्या, और तो और श्रीराधा रहित वैकुण्ठ की शोभा से भी हमारा क्या

प्रयोजन किन्तु करोड़ों जन्म भी लग जाएँ, वृन्दावन धाम के विषय में मधुर आशा ही चित्त में रहे ।

श्याम श्यामेत्यनुपमरसापूर्णवर्णैर्जपन्ती
स्थित्वा स्थित्वा मधुरमधुरोत्तारमुच्चारयन्ती ।
मुक्तास्थूलान्नयनगलितानश्रुबिन्दून्वहन्ती
हृष्यद्रोमा प्रतिपदचमत्कुर्वती पातु राधा ॥२१७॥

प्रेम-वैचित्री –

श्रीकृष्णप्रेम-विह्वला श्रीराधा 'श्याम-श्याम' इन अनुपम रस भरे अक्षरों को प्रति क्षण जपती हुई, कभी अपने विशाल नेत्रों से उस जप में रुक-रुक कर तार-स्वर से उच्चारण करती हुई स्थूल मोतियों के समान अश्रु-बिन्दुओं की वर्षा करती हुई, प्रिय के आने के सम्भ्रम से चमत्कृत होती हुई, हर्ष भरे पुलकित रोमावली वाली 'श्रीराधा' हमारी रक्षा करें ।

तादृङ्मूर्तिर्व्रजपतिसुतः पादयोर्मे पतित्वा
दन्ताग्रेणाथ धृततृणकं काकुवादान्ब्रवीति ।
नित्यं चानुव्रजति कुरुते सङ्गमायोद्यमं चे
त्युद्वेगं मे प्रणयिनि किमावेदयेयं नु राधे ॥२१८॥

प्रेम-वैचित्री –

हे प्रणयिनी श्रीराधे ! ब्रजराजनन्दन मोहनमूर्ति मेरे चरणों में गिरकर दांतों के अग्रभाग में तिनका दबाकर कपट रहित अत्यन्त चाटुकारी के शब्द कहा करते हैं; 'मैं आपके साथ उनका मिलन करा दूँ' इस लक्ष्य से मेरा पीछा भी करते हैं; मैं उनके इस दैन्य-व्यवहार से उत्पन्न उद्वेग का आपसे कैसे निवेदन करूँ ?

चलल्लीलागत्या क्वचिदनुचलद्धंसमिथुनम्
क्वचित् केकिन्यग्रे कृतनटनचन्द्रक्यनुकृति ।
लताश्लिष्टं शाखिप्रवरमनुकुर्वत् क्वचिदहो
विदग्धद्वन्द्वं तद् रमत इह वृन्दावनभुवि ॥२१९॥

युगल का नित्य विहार –

वह चतुर जोड़ी श्रीवृन्दावनभूमि में लीलापरायण होकर कभी गति में हंस की जोड़ी का अनुकरण करती है, कभी मयूरों के आगे उनके नृत्य-भङ्गी का अनुकरण करती है और कभी वृक्ष से लिपटी लताओं का अनुकरण करके क्रीड़ारत है ।

व्याकोशेन्दीवराष्टापदकमलरुचाहारि कान्त्या स्वया
यत् कालिन्दीयं सुरभिमनिलं शीतलं सेवमानम् ।
सान्द्रानन्दं नवनवरसं प्रोल्लसत्केलिवृन्दम्
ज्योतिर्द्वन्द्वं मधुरमधुरं प्रेमकन्दं चकास्ति ॥२२०॥

युगल-ज्योति की नित्य विहारलीला –

जिस युगल ने अपनी कान्ति से खिले हुए नील एवं पीत कमल की शोभा को चुरा लिया है, जो कालिन्दी की सुगन्धित व शीतल वायु का सेवन करते रहते हैं, वह सघन आनन्दमय नये-नये रस से परिपूर्ण एवं मधुर से मधुर प्रेम का उद्गम स्थान है; ऐसी वह प्रेम का आश्रय रूप 'युगल-ज्योति' श्रीवृन्दावन में विराज रही है ।

कदा मधुरसारिकाः स्वरसपद्यमध्यापयत्
प्रदाय करतालिकाः क्वचन नर्तयत् केकिनम् ।
क्वचित् कनकवल्लरीवृततमाललीलाधनम्
विदग्धमिथुनं तदद्भुतमुदेति वृन्दावने ॥२२१॥

जोड़ी की विहारलीला –

कभी मधुर स्वर वाली सारिका (मैंना) को निज रस के पद्यों को पढ़ाते हुए, कभी बार-बार ताली बजाकर मोरों को नचाते हुए, कभी सुनहरी लता से आलिङ्गित तमाल-तरु के लीलानुकरण से चतुर एवं अद्भुत जोड़ी श्रीवृन्दावन में जगमगा रही है ।

पत्रालीं ललितां कपोलफलके नेत्राम्बुजे कज्जलम्
रङ्गं बिम्बफलाधरे च कुचयोः काश्मीरजालेपनम् ।
श्रीराधे नवसङ्गमाय तरले पादाङ्गुलीपङ्क्तिषु
न्यस्यन्ती प्रणयादलक्तकरसं पूर्णा कदा स्यामहम् ॥२२२॥

तीव्र मनोरथ –

हे श्रीराधे ! आपके कपोल फलकों पर सुन्दर पत्रावली, आपके कमल-दल-नेत्रों में काजल, बिम्बाफल जैसे अधरोष्ठों में रंग एवं युगल स्तनों पर केसर का लेप, नये संगम के लिए उत्कण्ठित चरणों की अङ्गुलियों में प्रीतिपूर्वक महावर लगाती हुई मैं कब मनोरथ से पूर्ण बनूँगी ?

श्रीगोवर्धन एक एव भवता पाणौ प्रयत्नाद् धृतो –
राधावर्ष्मणि हेमशैलयुगले दृष्टेऽपि ते स्याद् भयम् ।
तद् गोपेन्द्रकुमार मा कुरु वृथा गर्वं परीहासतः
कर्ह्येवं वृषभानुनन्दिनि तव प्रेयांसमाभाषये ॥२२३॥

सुन्दर सख्य परिहास –

हे गोपेन्द्र कुमार ! तुम्हारा गर्व करना व्यर्थ है, तुमने तो एक ही गोवर्धन पर्वत बड़े प्रयत्न से धारण किया था किन्तु 'श्रीराधा' अपने सुन्दर शरीर पर एक नहीं

दो स्वर्ण-पर्वत को धारण कर रही हैं, जिन्हें देखकर के तुम भयभीत हो जाते हो । हेवृषभानुलाड़िली ! मैं कब ऐसा परिहास आपके प्रियतम से करूँगी ?

अनङ्गजयमङ्गलध्वनितकिङ्किणीडिण्डिमः
स्तनादिवरताडनैर्नखरदन्तघातैर्युतः ।
अहो चतुरनागरीनवकिशोरयोर्मञ्जुले
निकुञ्जनिलयाजिरे रतिरणोत्सवो जृम्भते ॥२२४॥

युगल की नित्य विलासपरता –

सुन्दर निकुञ्ज भवन के आँगन में 'चतुर नागरी और नवल किशोर' के काम-विजय घोषित करता हुआ दोनों की किङ्किणियों का शब्द, स्तनादि अङ्गों का रस भरा मर्दन एवं उन पर श्रीनख व दाँतों से किया गया वृण युक्त रति-युद्ध रूपी उत्सव प्रकाशित हो रहा है ।

यूनोर्वीक्ष्य दरत्रपानटकलामादीक्षयन्ती दृशो –
र्वृण्वाना चकितेन सञ्चितमहारत्नस्तनं चाप्युरः ।
सा काचिद् वृषभानुवेश्मनि सखीमालासु बालावली
मौलिः खेलति विश्वमोहनमहासारूप्यमाचिन्वती ॥२२५॥

नित्य यौवन का प्राकट्य –

किन्हीं दो युवक-युवती की नटकला को देखकर लज्जा और भय से अपने नये उत्पन्न महारत्न जैसे स्तनमण्डल को चकित भाव से ढकती हुई मानो यौवन की पाठशाला में नेत्रों द्वारा प्रथम दीक्षा ग्रहण की है; इस प्रकार अखिल विश्व को मोहित करने वाले महारूप-लावण्य का संग्रह करती हुई कोई अवर्णनीय 'ललना-समूह किशोरियों की शिरोमणि' अपनी सखियों के समूह के साथ वृषभानुभवन में क्रीड़ा कर रही है ।

ज्योतिःपुञ्जद्वयमिदमहो मण्डलाकारमस्याः
वक्षस्युन्मादयति हृदयं किं फलत्यन्यदग्रे ।
भ्रू कोदण्डं नकृतघटनं सत्कटाक्षौघबाणैः
प्राणान् हन्यात् किमु परमतो भावि भूयो न जाने ॥२२६॥

अज्ञात यौवना –

एक आश्चर्य ! इस बाला के वक्षःस्थल पर दो मण्डलाकार ज्योति-पुञ्ज अभी से ही हृदय को उन्मत्त बना रहे हैं; आगे इस उन्माद से अधिक क्या परिणाम होगा ? पता नहीं । ये 'भौंहों का धनुष' कटाक्ष रूपी बाण-समूह के संयोग बिना ही प्राणों को छीन रहा है, फिर बाणों के साथ क्या फल देगा ?

भोः श्रीदामन्सुबल वृषभ स्तोककृष्णार्जुनाद्याः
किं वो दृष्टं मम नु चकिता दृग्गता नैव कुञ्जे ।
काचिद् देवी सकलभुवनाप्लाविलावण्यपूरा
दूराद् एवाखिलमहरत प्रेयसो वस्तु सख्युः ॥२२७॥

'श्रीराधिका' का सर्वापहारी रूप –

(श्यामसुन्दर की उक्ति) हे श्रीदामा, सुबल, वृषभ, स्तोक कृष्ण, अर्जुन आदि सखाओ ! क्या तुमने देखा, मेरी चकित दृष्टि कुञ्ज में प्रवेश नहीं कर पायी । अपने सौन्दर्य के प्रवाह से सम्पूर्ण लोकों को डुबाने वाली किसी अवर्णनीया देवी ने तुम्हारे प्रिय सखा श्रीकृष्ण का सब कूछ लूट लिया है ।

गता दूरे गावो दिनमपि तुरीयांशमभजद्
वयं हातुं क्लान्तास्तव च जननी वर्त्मनयना ।
अकस्मात् तूष्णीके सजलनयने दीनवदने
लुठत्यस्यां भूमौ त्वयि नहि वयं प्राणिणिषवः ॥२२८॥

राधारूप-दर्शन का कृष्ण पर प्रभाव –

(सखाओं ने कहा - हे कृष्ण !) हमारी गायें दूर चली गयी हैं, दिन भी अपने चौथे भाग में पहुँच गया है अर्थात् समाप्त-सा हो गया है । हम लोग भी तुम्हें छोड़कर नहीं जा सकते । तुम्हारी माँ (यशोदा) भी तुम्हारे आने की आशा में मार्ग पर दृष्टि लगाए बैठी है । तुम्हारे मूर्च्छित होकर भूमि पर गिरने से और चुप हो जाने से, आँखों में अश्रु और उदास हो जाने से यह निश्चित है कि हम लोग भी अब प्राण धारण नहीं करना चाहते ।

(रसकुल्या में 'दातुम्' के स्थान पर 'हातुम्' पाठ माना है, वही यहाँ लिया गया है या 'दैप्, दाप् शोधने धातु' से 'दातुम्' पाठ में भावार्थ हुआ – 'तुम्हारे शोधन में थक गए हैं ।)

नासाग्रे नवमौक्तिकं सुरुचिरं स्वर्णोज्ज्वलं बिभ्रती
नानाभङ्गिरनङ्गरङ्गविलसल्लीलातरङ्गावलिः ।
राधे त्वं प्रविलोभय व्रजमणिं रत्नच्छटामञ्जरी
चित्रोदञ्चितकञ्चुकस्थगितयोर्वक्षोजयोः शोभया ॥२२९॥

'राधारूप' वर्णन –

हे श्रीराधे ! नासिका के अग्रभाग में स्वर्ण-जटित उज्ज्वल नयी मुक्ता को धारण करने वाली आप स्वयं अनेक प्रकार के हाव-भावों से युक्त काम के रस-विलास से युक्त लीला-तरंगों की पंक्ति हैं । आपके 'युगल स्तन' रत्नमयी चित्र-विचित्र चोली से ढके हैं; आप इनकी शोभा से ब्रजमणि कृष्ण को भलीभाँति लोभित करें ।

अप्रेक्षे कृतनिश्चयापि सुचिरं वीक्षेत दृक्कोणतो
मौने दार्ढ्यमुपाश्रितापि निगदेत् तामेव याहीत्यहो ।

अस्पर्शे सुधृताशयापि करयोर्धृत्वा बहिर्यापयेद्
राधाया इति मानदुः स्थितिमहं प्रेक्षे हसन्ती कदा ॥२३०॥

मानलीला की विचित्रता –

अहो ! (आश्चर्य है !!) यद्यपि श्रीजी प्रियतम की ओर न देखने का निश्चय कर चुकी हैं, फिर भी नेत्र की कोरों से उन्हें देर तक देखती रहती हैं; दृढतापूर्वक मौन धारण करके भी 'उसी के पास चले जाओ' ऐसा कह देती हैं । स्पर्श न करने का निश्चय करके भी प्रियतम के दोनों हाथ पकड़कर कुञ्जभवन से बाहर निकालती हैं । मैं हँसती हुई श्रीराधारानी के मान की इस अस्थिर व कठोर स्थिति को कब देखूँगी ?

रसागाधे राधाहृदि सरसि हंसः करतले
लसद्वंशस्त्रोतस्यमृतगुणसङ्गः प्रतिपदम् ।
चलत्पिच्छोत्तंसः सुरचितवतंसः प्रमदया
स्फुरद्गुञ्जागुच्छः स हि रसिकमौलिर्मिलतु माम् ॥२३१॥

रसिकशेखर कृष्ण का दर्शन –

अहो ! श्रीराधारानी के हृदयरूपी अगाध रस से भरे सरोवर के जो हंस हैं, जिनके करकमल में शोभित वंशी के छिद्रों से अमृतगुण (आनन्द) का पल-पल में श्रवण होता रहता है और जिनके मस्तक पर चञ्चल मयूरचन्द्रिका (मोरमुकुट), प्रकृष्ट मद वाली श्रीराधा द्वारा पहनाए गए सुन्दर कर्णफूल चमक रहे हैं तथा गले में प्रकाशित गुञ्जामाला शोभित है; वे रसिक-चूडामणि मुझे प्राप्त हों ।

अकस्मात् कस्याश्चिन् नववसनमाकर्षति परम्
मुरल्या धम्मिल्ले स्पृशति कुरुतेन्याकरधृतिम् ।
पतन् नित्यं राधापदकमलमूले व्रजपुरे
तदित्थं वीथीषु भ्रमति स महालम्पटमणिः ॥२३२॥

बहुनायक की राधावशता –

वे अचानक किसी (गोपी) की नयी चूनरी को खींचने लगते हैं और दूसरे के जूड़े को मुरली से स्पर्श करते हैं, किसी का हाथ पकड़ते हैं किन्तु वही राधारानी के पदकमल-मूल में सदा लोटते रहते हैं; इस प्रकार ब्रजपुर (वृषभानुपुर) की गलियों में महालम्पटों के शिरोमणि (श्रीकृष्ण) घूमते रहते हैं ।

एकस्या रतिचौर एव चकितं चान्यास्तनान्ते करम्
कृत्वा कर्षति वेणुनान्यसुदृशो धम्मिल्लमल्लीस्रजम् ।
धत्तेन्याभुजवल्लिमुत्पुलकितां सङ्केतयत्यन्यया
राधायाः पदयोर्लुठत्यलममुं जाने महालम्पटम् ॥२३३॥

बहुनायक की राधा-आधीनता –

सखी बोली – "इस महालम्पट को मैं भलीभाँति जानती हूँ, यह किसी सखी का रति-चोर है तो किसी अन्य के स्तन को चकित होकर स्पर्श करता है; किसी सुन्दर नेत्र वाली के जूड़े में लगी बेला के फूल की माला को अपनी वंशी से खींचता है तो किसी अन्य की रोमाञ्चित भुजलता को पकड़कर धारण करता है; किसी दूसरी को कुञ्जों के भीतर चलने का संकेत करता है किन्तु हमारी 'श्रीराधा के चरणों' में पूर्णरूप से लोटता ही रहता है ।"

प्रियांसे निक्षिप्तोत्पुलकभुजदण्डः क्वचिदपि
भ्रमन्वृन्दारण्ये मदकलकरीन्द्राद्भुतगतिः ।
निजां व्यञ्जन्नत्यद्भुतसुरतशिक्षां क्वचिदहो
रहः कुञ्जे गुञ्जाध्वनितमधुपे क्रीडति हरिः ॥२३४॥

श्रीवनविहार –

अहो ! वे श्रीकृष्ण कभी अपनी प्रियतमा के कंधे पर अपने रोमाञ्चित

भुजदण्ड को डालकर मतवाले गजराज के समान श्रीवन में घूमा करते हैं और कभी भौंरों से गुञ्जित एकान्त कुञ्ज में अपनी अत्यन्त अद्भुत सुरत-शिक्षा को प्रकट करते हुए क्रीड़ा करते हैं ।

दूरे सृष्ट्यादिवार्त्ता न कलयति मनाङ्नारदादीन् स्वभक्तान्
श्रीदामाद्यैः सुहृद्भिर्न मिलति हरति स्नेहवृद्धिं स्वपित्रोः ।
किन्तु प्रेमैकसीमां मधुररससुधासिन्धुसारैरगाधाम्
श्रीराधामेव जानन्मधुपतिरनिशं कुञ्जवीथीमुपास्ते ॥२३५॥

कुञ्जविहारी की कुञ्जोपासना -

श्रीकृष्ण ने सृष्टि आदि की बात को तो दूर कर दिया है । नारद आदि अपने भक्तों का थोड़ा भी विचार नहीं करते । श्रीदामा आदि सखाओं के साथ भी नहीं मिलते हैं और अपने माता-पिता (नन्द-यशोदा) के स्नेहवृद्धि को भी नहीं चाहते किन्तु वही मधुपति (कृष्ण) मधुर रस रूपी अमृतसागर के सार रूप अगाध प्रेम की एकमात्र सीमा 'राधारानी' को ही जानकर दिन-रात कुञ्ज गलियों में ही उपासना किया करते हैं ।

सुस्वादुसुरसतुन्दिलमिन्दीवरवृन्दसुन्दरं किमपि ।
अधिवृन्दाटवि नन्दति राधावक्षोजभूषणं ज्योतिः ॥२३६॥

नित्य प्रिया 'श्रीराधा'–

सुन्दर आस्वादनीय सुन्दर रस से पुष्ट, नील-कमल समूह के समान सुन्दर, श्रीराधा के वक्षःस्थल की आभूषण रूपा कोई अवर्णनीया ज्योति (श्रीकृष्ण) श्रीवृन्दावन में आनन्दित हो रही है ।

कान्तिः कापि परोज्ज्वला नवमिलच्छ्रीचन्द्रिकोद्भासिनी
रामाद्यद्भुतवर्णकाञ्चितरुचिर्नित्याधिकाङ्गच्छविः ।
लज्जानम्रतनुः स्मयेन मधुरा प्रीणाति केलिच्छटा
सन्मुक्ताफलचारुहारसुरुचिः स्वात्मार्पणेनाच्युतम् ॥२३७॥

श्रीकृष्ण-तोषणी 'श्रीराधा' –

पल-पल में उज्ज्वल और नवीन शोभा युक्त चाँदनी को प्रकाशित करने वाली, अद्भुत रूप रंग वाली लक्ष्मी आदि रमणियाँ भी जिनकी कान्ति को पूजा करती हैं, पल-पल में अधिक विकसित अङ्ग-द्युति से जो युक्त रहती हैं, लज्जा से जो झुकी रहती हैं, मीठी मुस्कान से मधुर क्रीड़ा-विलासों की छटा से युक्त हैं । सुन्दर मोतियों के हारों से जो दीप्तिमती हैं, उज्ज्वल अवर्णनीय कान्ति से जो युक्त हैं, सर्वस्व समर्पण के द्वारा अच्युत (कृष्ण) को सन्तुष्ट कर रही हैं ।

यन् नारदाजेशशुकैरगम्यं वृन्दावने वञ्जुलमञ्जुकुञ्जे ।
तत् कृष्णचेतोहरणैकविज्ञमत्रास्ति किञ्चित् परमं रहस्यम् ॥२३८॥

रहस्यमयी श्रीराधा –

इसी श्रीवन में मनोहर बेंत की कुञ्जों में ('बेंत' का अर्थ अशोक वृक्ष भी लिखा है) नारद, ब्रह्मा, शंकर और शुकदेव आदि को भी अगम्य श्रीकृष्ण के चित्त को हरण करने वाला रहस्य (श्रीराधा) विद्यमान है ।

लक्ष्म्या यश्च न गोचरीभवति यन्नापुः सखायः प्रभोः
सम्भाव्योपि विरञ्चिनारदशिवस्वायम्भुवाद्यैर्न यः ।
यो वृन्दावननागरीपशुपतिस्त्रीभावलभ्यः कथम्
राधामाधवयोर्ममास्तु स रहोदास्याधिकारोत्सवः ॥२३९॥

श्रीराधामाधव की निकुञ्ज-दासी होने का मनोरथ –

जो लक्ष्मी से भी अलक्षित हैं, श्रीकृष्ण के सखाओं को भी प्राप्त नहीं हैं; ब्रह्मा, नारद, शंकर, सनकादिक के द्वारा भी प्राप्य नहीं हैं किन्तु वही श्रीवन की कुशल गोपिकाओं (ललितादि) के किसी प्रकार के भाव (सखीभाव) से ही प्राप्य हैं । मुझे उन्हीं राधा-माधव के एकान्त दास्य का अधिकार-उत्सव प्राप्त हो; ऐसा लक्ष्य है ।

उच्छिष्टामृतभुक्तवैव चरितं श्रृण्वंस्तवैव स्मरन्
पादाम्भोजरजस्तवैव विचरन् कुञ्जांस्तवैवालयान् ।
गायन् दिव्यगुणांस्तवैव रसदे पश्यंस्तवैवाकृतिम्
श्रीराधे तनुवाङ्मनोभिरमलैः सोऽहं तवैवाश्रितः ॥२४०॥

अनन्य शरणागति के त्रिधा स्वरूप का वर्णन –

हे श्रीराधे ! हे दिव्य रस (दास्य रस) देने वाली ! आपके अमृतमय उच्छिष्ट (जूठन) को लेता हुआ, आपके चरित्रों को ही सुनता हुआ, आपके चरणकमल की रज का स्मरण करता हुआ, आपके ही रासस्थल-कुञ्जों में विचरण करता हुआ, आपके ही दिव्य गुण-समूहों का गान करता हुआ, आपकी ही रसमयी छवि का (भावना से) दर्शन करता हुआ, शुद्ध काय-मन-वचन द्वारा मैं आपके ही आश्रित हूँ ।
(इस श्लोक में 'सखाभाव' से प्रार्थना की गई है ।)

क्रीडन्मीनद्वयाक्ष्याः स्फुरदधरमणीविद्रुमश्रोणिभार –
द्वीपायामोन्तरालस्मरकलभकटाटोपवक्षोरुहायाः ।
गम्भीरावर्त्तनाभेर्बहुलहरिमहाप्रेमपीयूषसिन्धोः
श्रीराधायाः पदाम्भोरुहपरिचरणे योग्यतामेव चिन्वे ॥२४१॥

सहचरी भाव का अन्वेषण (साधना) – उन श्रीराधा के दोनों चरणारविन्दों की परिचर्या की योग्यता का अन्वेषण करती हूँ, जिसमें

युगल नेत्र, क्रीड़ा करती हुई दो मछलियों के समान हैं, दीप्तिमान अधर ही विद्रुम मणि (मूंगामणि) हैं । जिनके पृथुल दोनों नितम्ब दो विस्तृत द्वीप हैं, जिनके बीच में कामरूपी गजशावक (हाथी के बच्चे) के दो गण्डस्थल के आडम्बर (उभार) सदृश दोनों स्तन हैं । जिनकी नाभि ही गम्भीर भँवर है, जो श्रीहरि के लिए विशाल प्रेमामृत की सिन्धु रूपा हैं ।

मालाग्रन्थनशिक्षया मृदुमृदुश्रीखण्डनिर्घर्षणा –
देशेनाद्भुतमोदकादिविधिभिः कुञ्जान्तसम्मार्जनैः ।
वृन्दारण्यरहःस्थलीषु विवशा प्रेमार्तिभारोद्गमात्
प्राणेशं परिचारिकैः खलु कदा दास्या मयाधीश्वरी ॥२४२॥

श्रीजी की स्वीकृति से ही 'सहचरीभाव' की प्राप्ति –

श्रीवन के निभृत-निकुञ्ज में विराजती हुई अपने प्रिय की प्रेम-क्रीड़ा के भार के उदय से विवश स्वामिनी 'श्रीराधा' प्रियतम के लिए पुष्पमाला गूँथने की शिक्षा देती हुई, धीरे-धीरे कोमल चन्दन घिसने का आदेश देती हुई, अद्भुत मोदक आदि बनाने की विधि बताती हुई, कुञ्ज-प्रान्त के भीतर बुहारी लगाने की आज्ञा देती हुई, सेवा-सम्बन्धी विस्तृत कार्य में कब दासी रूप से मुझे स्वीकार करेंगी ?

प्रेमाम्भोधिरसोल्लसत्तरुणिमारम्भेण गम्भीरदृग् –
भेदा भङ्गिमृदुस्मितामृतनवज्योत्स्नाञ्चित श्रीमुखी ।
श्रीराधा सुखधामनि प्रविलसद्वृन्दाटवीसीमनि
प्रेयोऽङ्के रतिकौतुकानि कुरुते कन्दर्पलीलानिधिः ॥२४३॥

कुञ्जविहारिणी 'श्रीराधा' –

प्रेमसमुद्र के रस से उल्लसित तरुणावस्था के प्रारम्भ के कारण जिनकी दृष्टि-भङ्गिमा गम्भीर हो गई है, उस भङ्गिमा से युक्त मृदु-मुस्कान रूपी अमृत की नई चाँदनी

से जिनका श्रीमुख शोभा को प्राप्त हो रहा है, वही काम-कलाओं की निधि 'श्रीराधा' शोभित वृन्दावन की सुखधाम-कुञ्जों में प्रियतम के अंक में कौतुकभरी रति-क्रीड़ा कर रही हैं ।

शुद्धप्रेमविलासवैभवनिधिः कैशोरशोभानिधिः
वैदग्धीमधुराङ्गभङ्गिमनिधिर्लावण्यसम्पन्निधिः ।
श्रीराधा जयतान् महारसनिधिः कन्दर्पलीलानिधिः
सौन्दर्यैकसुधानिधिर्मधुपतेः सर्वस्वभूतो निधिः ॥२४४॥

श्रीकृष्ण सर्वस्वा 'राधा' की जय –

उज्ज्वल-प्रेम-रस-विलास के वैभव की निधि, किशोरावस्था की शोभा की निधि, चतुरताभरी मधुर अङ्गों की भङ्गिमाओं की निधि, लावण्य रूपी सम्पत्ति की निधि, महारास की निधि, काम लीला की निधि, सुन्दरता की एकमात्र अमृतमयी निधि और मधुपति कृष्ण की सर्वस्वभूत निधि 'श्रीराधारानी' की जय हो ।

नीलेन्दीवरवृन्दकान्तिलहरीचौरं किशोरद्वयम्
त्वय्येतत्कुचयोश्चकास्ति किमिदं रूपेण संमोहनम् ।
तन्मामात्मसखीं कुरु द्वितरुणीयं नौ दृढं श्लिष्यति
स्वच्छायामभिवीक्ष्य मुह्यति हरौ राधास्मितं पातु नः ॥२४५॥

स्वविमोहिनी कृष्ण छवि –

श्रीप्रियाजी के दोनों स्तनमण्डलों में अपना प्रतिबिम्ब देखकर श्रीलालजी बोले – हे प्रिये ! तुम्हारे युगल स्तनों में नीलकमल की कान्ति को हरण करने वाले दो नव किशोर शोभित हो रहे हैं, उनके इस रूप से मेरा मन सम्मोहित हो रहा है, अतः आप मुझे अपनी सखी बना लें, जिससे ये दोनों किशोर हम दोनों तरुणियों का दृढ

आलिङ्गन करेंगे; इस प्रकार श्रीकृष्ण के मोह को देखकर प्रकटित 'श्रीराधा का मृदु हास्य' हमारी रक्षा करे ।

सङ्गत्यापि महोत्सवेन मधुराकारां हृदि प्रेयसः
स्वच्छायामभिवीक्ष्य कौस्तुभमणौ सम्भूतशोका क्रुधा ।
उत्क्षिप्यप्रियपाणिमेव विनयेत्युक्त्वा गताया बहिः
सख्यै सास्त्र निवेदनानि किमहं श्रोष्यामि ते राधिके ॥२४६॥

सम्भ्रम मानवती 'श्रीराधा' –

हे श्रीराधे ! तुम्हारे सुख भरे मिलन-महोत्सव में सम्मिलित होने पर प्रियतम के हृदय स्थल पर स्थित कौस्तुभमणि में आप अपनी प्रतिबिम्बित मधुर छवि देखकर उत्पन्न हुए क्रोध और शोक के कारण श्रीकृष्ण के हाथ को झटककर 'अरे ढीठ' ऐसा कहकर कुञ्ज के बाहर आयीं । आपके द्वारा इस घटना से आँसू भरे सखियों से किए गए निवेदन को क्या मैं सुनूँगी ?

महामणिवरस्त्रजं कुसुमसञ्चयैरञ्चितम्
महामरकतप्रभा प्रथित मोहित श्यामलम् ।
महारसमहीपतेरिव विचित्रसिद्धासनम्
कदा नु तव राधिके कबरभारमालोकये ॥२४७॥

कबरी (जूड़ा) छवि वर्णन –

हे श्रीराधे ! महामणियों की श्रेष्ठ माला और फूलों के समूह से शोभित, श्रेष्ठ मरकतमणि की कान्ति से युक्त श्रीश्यामसुन्दर द्वारा गूँथे हुए और उन्हीं की श्यामता को मोहित करने वाले रसराज श्रृंगार के सिद्धासनवत् आपके उस कबरी (जूड़ा) भार को मैं कब देखूँगी ?

मध्ये मध्ये कुसुमखचितं रत्नदाम्ना निबद्धम्
मल्लीमाल्यैर्घनपरिमलैर्भूषितं लम्बमानैः ।
पश्चाद्राजन्मणिवरकृतोदारमाणिक्यगुच्छम्
धम्मिल्लं ते हरिकरधृतं कर्हि पश्यामि राधे ॥२४८॥

वेणी (जूड़े) की छवि –

बीच-बीच में फूलों द्वारा रचित रत्नों की माला से जो बँधी हुई है, घने परिमल वाली लम्बी मालती-माला से शोभित, पीछे के भाग में महामणि के गुच्छों से शोभित और श्रीकृष्ण के हाथों से बनायी हुई आपकी वेणी को मैं कब देखूँगी ?

विचित्राभिर्भङ्गीविततिभिरहो चेतसि परम्
चमत्कारं यच्छंल् ललितमणिमुक्तादिललितः ।
रसावेशाद्विवित्तः स्मरमधुरवृत्ताखिलमहो –
द्भुतस्ते सीमन्ते नवकनकपट्टं विजयते ॥२४९॥

सीमन्त में सुनहरी पट्टी –

हे श्रीराधे ! सीमन्त में स्थित अद्भुत सुनहरी पट्टी ही चारों ओर जय को प्राप्त हो रही है, वह सुनहरी पट्टी सुन्दर मणिमुक्ताओं से जड़ी हुई है, रस के आवेश से प्रसिद्ध है, सभी काम चरित्रों से भरी हुई है । हे राधे ! वह सुनहरी पट्टी आपकी रस-भङ्गिमाओं से हमारे चित्त को परम आश्चर्य और आनन्द दे रही है ।

अहो द्वैधीकर्तुं कृतिभिरनुरागामृतरस –
प्रवाहैः सुस्निग्धैः कुटिलरुचिर श्याम उचितः ।
इतीयं सीमन्ते नवरुचिरसिन्दूररचिता
सुरेखा नः प्रख्यापयितुमिव राधे विजयते ॥२५०॥

सीमन्त में स्थित सिन्दूर-रेखा का वर्णन –

हे श्रीराधे ! अतीव स्नेहयुक्त परिपक्व अनुराग रूपी अमृत रस के अनन्त प्रवाह से कुटिल (कुञ्चित), परम कमनीय एवं श्यामवर्ण के आपके केशों को दो भागों में विभक्त करने के लिए मांग में नवीन मनोरम सिन्दूर से पुण्यात्मा गोपीजनों द्वारा विरचित 'अरुण वर्ण की सुन्दर रेखा' कुटिल (त्रिभंगी) परम कमनीय श्यामसुन्दर के मन को दो भागों में विभक्त करने के लिए सर्वथा अनुरूप (उचित) ही है, यह हम सखीजनों को अवगत कराने के लिए यह 'सुभग-सुन्दर सिन्दूर रेखा' विजय को प्राप्त हो रही है । 'सिन्दूर-रेखा' श्रीकिशोरीजी के केश एवं श्यामसुन्दर के मन को दो भागों में विभक्त कर चरितार्थ (कृतकृत्य) होकर सर्वोत्कृष्ट विजय-भाव को प्राप्त हो रही है । (अनुरागामृत रस के अविरल प्रवाह का मूलस्रोत प्रिया-प्रियतम उभयनिष्ठ हैं । इस 'अनुराग की अरुणिमा' सिन्दूर-रेखा को रमणीय बना रही है, इसका अवलोकन कर प्रियतम का मन दुविधा में पड़ गया है – किशोरीजी की कृपा प्राप्त करने के लिए गोपियों का सहारा लूँ अथवा स्वयं उनसे निवेदन करूँ ?

यह 'अनुराग' अमृत रूप होने से सनातन है अर्थात् काल-बाह्य है, रस-स्वरूप होने से ब्रह्मवत् व्यापक है तथा आस्वाद्य है ।

इस श्लोक में 'कुटिल रुचिर श्याम' एवं 'द्वैधी कर्तुं' में श्लेष है, अतः यह उभयपक्ष में अन्वित है ।

श्यामा-श्याम का ऐक्यबोध, आनन्त्य एवं रसवत्व सखियों को आश्चर्य में डाल रहा है । "रसो वै सः" । "एकं ज्योतिरभूद् द्वेधा राधामाधव रूपकम्"।)

चकोरस्ते वक्त्रामृतकिरणबिम्बे मधुकरस् –
तव श्रीपादाब्जे जघनपुलिने खञ्जनवरः ।

स्फुरन्मीनो जातस्त्वयि रससरस्यां मधुपतेः
सुखाटव्यां राधे त्वयि च हरिणस्तस्य नयनम् ॥ २५१ ॥

युगल की पारस्परिक प्रेमासक्ति –

हे श्रीराधे ! 'मधुपति श्रीकृष्ण के नयन' तुम्हारे मुखचन्द्र के चकोर हैं, तुम्हारे श्रीचरण के मधुकर हैं, जंघा रूपी पुलिन के श्रेष्ठ खञ्जन हैं । आपकी रस सरसी (कुण्डिका – छोटे सरोवर) के चञ्चलमीन; आपका 'श्रीवपु' जो सुख की अटवी है, उसके हरिण हो रहे हैं ।

स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा मृदुकरतलेनाङ्गमङ्गं सुशीतम्
सान्द्रानन्दामृतरसह्रदे मज्जतो माधवस्य ।
अङ्के पङ्केरुहसुनयना प्रेममूर्तिः स्फुरन्ती
गाढाश्लेषोन्नमितचिबुका चुम्बिता पातु राधा ॥ २५२ ॥

'श्रीराधा' से रक्षा की प्रार्थना –

श्रीकृष्ण अपने कोमल करकमल से श्रीजी के अत्यन्त शीतल सभी अङ्ग-प्रत्यंगों के बार-बार स्पर्श द्वारा घनीभूत आनन्दामृत रससागर में मग्न हो जाते हैं और जो अपने प्रियतम की गोद में विराजिता हैं, गाढ़ आलिङ्गन के कारण जिनका चिबुक कुछ ऊपर उठ गया है; जिससे श्रीकृष्ण ने उसका चुम्बन किया है, इससे वे और चञ्चल हो उठी हैं; वह कमलदललोचनी प्रेममूर्ति 'श्रीराधा' हम सब की रक्षा करें ।

सदा गायं गायं मधुरतरराधाप्रिययशः
सदा सान्द्रानन्दा नवरसदराधापतिकथाः ।
सदा स्थायं स्थायं नवनिभृतराधारतिवने
सदा ध्यायं ध्यायं विवशहृदि राधापदसुधाः ॥ २५३ ॥

तीव्र साधनपरता –

श्रीराधा की नयी निभृत-केलि-कुञ्ज के कानन में रहती हुई, सदा मधुरतर उनके प्रियरसों का और नयी-नयी आनन्ददायिनी श्रीराधावल्लभ की कथाओं का बार-बार गान करती हुई, श्रीराधाचरणामृत का सदा ध्यान करती हुई मैं कब विवश हृदय वाली हो जाऊँगी ?

श्याम श्यामेत्यमृतरससंस्राविवर्णाञ्जपन्ति
प्रेमौत्कण्ठ्यात् क्षणमपि सरोमाञ्चमुच्चैर्लपन्ती ।
सर्वत्रोच्चाटनमिव गता दुःखदुःखेन पारम्
काङ्क्षत्यह्नो दिनकरमलं क्रुध्यती पातु राधा ॥२५४॥

श्रीराधा की विरह-दशा –

'श्याम ! श्याम !!' इस अमृतरस को प्रवाहित करने वाले वर्णों को जपती हुई, दूसरे ही क्षण में प्रेमोत्कण्ठा से रोमाञ्चित होकर उच्चस्वर से आलाप करने लगती हैं; चित्त सभी ओरों से उच्चाटन को प्राप्त होता है । दिन के बीत जाने की इच्छा करती हैं, इसीलिए दिनकर के प्रति अत्यन्त कुपित हो जाती हैं; ऐसी विह्वला 'श्रीराधा' हमारी रक्षक बनें ।

कदाचिद् गायन्ती प्रियरतिकलावैभवगतिम्
कदाचिद् ध्यायन्ती प्रियसहभविष्यद्विलसितम् ।
अलं मुञ्चामुञ्चेत्यतिमधुरमुग्धप्रलपितैर् –
नयन्ती श्रीराधा दिनमिह कदानन्दयतु नः ॥२५५॥

विरह में तदाकारता –

कभी प्रियतम की रतिकला के वैभव की गति का गान करती हैं, कभी उनके साथ होने वाले भावी विलास में निमग्न हो जाती हैं । कभी "छोड़ो ! मुझे छोड़ो !! बस

हो गया ।" इस प्रकार मीठा और मधुर प्रलाप करती हुई दिवस बिताती हैं; वे श्रीराधा हमें कब आनन्दित करेंगी ?

श्रीगोविन्द व्रजवरवधूवृन्दचूडामणिस्ते
कोटिप्राणाभ्यधिकपरमप्रेष्ठपादाब्जलक्ष्मीः ।
कैङ्कर्येणाद्भुतनवरसेनैव मां स्वीकरोतु
भूयो भूयः प्रतिमुहुरधिस्वामि संप्रार्थयेहम् ॥२५६॥

श्रीकृष्ण से प्रार्थना –

हे श्रीगोविन्द ! ब्रज की श्रेष्ठ नायिकाओं के समूहों की जो चूडामणि हैं (श्रीराधा), जिनके 'चरणकमल की शोभा' आपको अपने करोड़ों प्राणों से भी अधिक प्यारी है; वे मुझे अपने अद्भुत और नित्य-नवीन कैङ्कर्य में स्वीकार करें, यही मेरी बारम्बार प्रार्थना है ।

अनेन प्रीता मे दिशति निजकैङ्कर्यपदवीम्
दवीयो दृष्टीनां पदमहह राधा सुखमयी ।
निधायैवं चित्तेकुवलयरुचिं बर्हमुकुटम्
किशोरं ध्यायामि द्रुतकनकपीतच्छविपटम् ॥२५७॥

कृष्णोपासना के फल रूप 'राधादास्य-प्राप्ति' –

जो सुखमयी राधा सभी की दृष्टि से अत्यन्त दूर हैं, वे प्रसन्न होकर अपनी 'कैङ्कर्य पदवी' मुझे प्रदान करें क्योंकि मैं पिघले हुए स्वर्ण के समान पीताम्बरधारी और मयूरपंख रचित मुकुटधारी, नीलेकमल की कान्ति वाले कृष्ण को हृदय में धारण करके उनका ध्यान करती हूँ ।

ध्यायंस्तं शिखिपिच्छमौलिमनिशं तन्नाम सङ्कीर्तयन्
नित्यं तच्चरणाम्बुजं परिचरंस्तन्मन्त्रवर्यं जपन् ।
श्रीराधापददास्यमेव परमाभीष्टं हृदा धारयन्
कर्हिस्यां तदनुग्रहेण परमोद्भूतानुरागोत्सवः ॥२५८॥

'युगल-पात्रता' की साधनचर्या –

मस्तक पर मोरपंखधारी श्रीकृष्ण का ध्यान करता हुआ, उनका नाम-कीर्तन करता हुआ, उनके चरणकमलों की नित्य सेवा करता हुआ, उनके मंत्रराज का जप करता हुआ, सर्वोच्च लक्ष्य श्रीराधाचरण-कैङ्कर्य को हृदय में धारण करता हुआ; मैं कब उनकी कृपा से परम अनुरागोत्सवशाली होऊँगा ?

श्रीराधारसिकेन्द्ररूपगुणवद्गीतानि संश्रावयन्
गुञ्जामञ्जुलहारबर्हमुकुटाद्यावेदयंश्चाग्रतः ।
श्यामप्रेषितपूगमाल्यनवगन्धाद्यैश्च संप्रीणयंस् –
त्वत्पादाब्जनखच्छटारसहृदे मग्ना कदा स्यामहम् ॥२५९॥

युगलकृपा-प्राप्ति 'शीलता' का मार्ग –

श्रीराधा और रसिक चूडामणि के रूप, गुण आदि से युक्त गीत-समूहों को सुनती हुई तथा रसिक श्रीकृष्ण के आगे सुन्दर गुञ्जामणियों का सुन्दर हार व मोरमुकुट आदि समर्पित करती हुई, श्यामसुन्दर कृष्ण से भेजे हुए सुपारी, माला, इत्र आदि के द्वारा आपको प्रसन्न करती हुई मैं कब आपके श्रीचरणकमल की नखमणि छटा रूप 'रस-सरोवर' में मग्न हो जाऊँगी ?

क्वासौ राधा निगमपदवीदूरगा कुत्र चासौ
कृष्णस्तस्याः कुचमुकुलयोरन्तरैकान्तवासः ।

क्वाहं तुच्छः परममधमः प्राण्यहो गर्ह्यकर्मा
यत् तन् नाम स्फुरति महिमा एष वृन्दावनस्य ॥२६०॥

धाम की महिमा –

कहाँ तो वैदिक मार्ग से अत्यन्त दूर श्रीराधा और कहाँ उनके श्रीयुगलस्तनकमल के मध्य में एकान्त-भाव से रहने वाले श्रीकृष्ण। अरे! कहाँ तो मैं परम अधम निन्दित कर्म करने वाला तुच्छ प्राणी, इतने पर भी उनका नाम (श्रीराधा) मुझसे स्फुरित होता है; यह निश्चय ही 'श्रीवृन्दावन धाम' की महिमा है।

वृन्दारण्ये नवरसकला कोमलप्रेममूर्त्तेः
श्रीराधायाश्चरणकमलामोदमाधुर्य्यसीमा।
राधां ध्यायन् रसिकतिलकेनात्तकेलीविलासाम्
तामेवाहं कथमिह तनुं न्यस्य दासी भवेयम् ॥२६१॥

सर्वोच्च कृपा-प्राप्ति –

श्रीवृन्दावन में नवीन-रस-कला की प्रेममूर्ति 'राधारानी' का ध्यान करती हुई, जिन्होंने रसिकशेखर श्रीकृष्ण के साथ केलि-विलास करना स्वीकार कर लिया है; ऐसे इस धाम में देहत्याग के बाद उनके चरणकमल के आमोद-माधुरी की सीमा स्वरूपा 'दासी' मैं कब होऊँगी ?

हा कालिन्दि त्वयि मम निधिः प्रेयसा क्षालितोभूद्
भो भो दिव्याद्भुततरुलतास्तत्करस्पर्शभाजः।
हे राधाया रतिगृहशुका हे मृगा हे मयूराः
भूयो भूयः प्रणतिभिरहं प्रार्थये वोऽनुकम्पाम् ॥२६२॥

धाम-निवासी सभी से प्रार्थना –

हे श्रीयमुने! आपके जल में मेरी सर्वस्व निधि स्वरूपा स्वामिनी श्रीराधा,

जिनका प्रक्षालन स्वयं प्रियतम कृष्ण ने किया है, जिनके साथ आपने जल-विहार किया है । अरे ! दिव्य, अद्भुत वृक्ष और लतागण !! तुम सभी उनके कोमल करस्पर्श भागी हो । राधारानी के रतिगृह में रहने वाले हे शुको ! हे मृगो !! हे मयूरो !!! मैं बार-बार आप सबकी कृपा-प्राप्ति के लिए प्रणतिपूर्वक प्रार्थना करती हूँ ।

वहन्ती राधायाः कुचकलशकाश्मीरजमहो
जलक्रीडावेशाद् गलितमतुलप्रेमरसदम् ।
इयं सा कालिन्दी विकसितनवेन्दीवररुचि –
स्सदा मन्दीभूतं हृदयमिह सन्दीपयतु मे ॥२६३॥

श्रीयमुना की कृपा-याचना –

अरे ! जो जल-क्रीड़ा में आविष्ट होकर प्रक्षालित हुई और अनुपम स्तन कलशों में लगी हुई प्रेम-रस-दायिनी केसर को प्रवाहित करती रहती हैं, वही खिले हुए नीलकमल की शोभावाली कलिन्दनन्दिनी यमुना मेरे मंद-हृदय को प्रकाशित करें ।

सद्योगीन्द्र सुदृश्यसान्द्ररसदानन्दैकसन्मूर्त्तयः
सर्वेऽप्यद्भुतसन्महिम्नि मधुरे वृन्दावने सङ्गताः ।
ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्य दृश्याश्च ये
सर्वान् वस्तुतया निरीक्ष्य परमस्वाराध्यबुद्धिर्मम ॥२६४॥

धाम-महिमा –

अद्भुत महिमा से भरे हुए मधुर वृन्दावन में जिनका वास है, वे भले ही क्रूर, पापी व सज्जनों के दर्शन और सम्भाषण के अयोग्य हैं किन्तु वे भी योगीन्द्रों के समूह के सुन्दर दर्शन योग्य सघन-रस देने वाले एकमात्र आनन्द की मूर्ति हैं; तात्विक दृष्टि से देखकर उनके प्रति मेरी परम आराध्य बुद्धि रहे ।

यद् राधापदकिङ्करीकृतहृदां सम्यग्भवेद् गोचरम्
ध्येयं नैव कदापि यद् धृदि विना तस्याः कृपास्पर्शतः ।
यत् प्रेमामृतसिन्धुसाररसदं पापैकभाजामपि
तद्वृन्दावनदुष्प्रवेशमहिमाश्चर्यं हृदि स्फूर्जतु ॥२६५॥

श्रीधाम-माहात्म्य –

श्रीधाम की वह आश्चर्यमयी दुष्प्रवेश महिमा मेरे हृदय में स्फुरित हो, जो श्रीराधाचरणों में किङ्करी-भाव भरे हृदय वालों के लिए सम्यक् प्रकार से दृष्टिगोचर हो सकती है, जो श्रीराधा की कृपा के स्पर्श के बिना हृदय में नहीं आती है और जो एकमात्र पापभागी महापापियों को भी प्रेमामृत रूपी समुद्र का सार "रस" दान करती है ।

राधाकेलिकलासु साक्षिणि कदा वृन्दावने पावने
वत्स्यामि स्फुटमुज्ज्वलाद्भुतरसे प्रेमैकमत्ताकृतिः ।
तेजोरूपनिकुञ्ज एव कलयन् नेत्रादिपिण्डस्थितम्
तादृक्स्वोचितदिव्यकोमलवपुः स्वीयं समालोकये ॥२६६॥

धामवास का फल 'स्वरूप-प्राप्ति' –

मैं कब प्रेम के विवश आकार वाली होकर श्रीराधा की क्रीड़ाओं के साक्षी प्रकट, उज्जवल अद्भुत रस से भरे हुए पवित्र श्रीवन में निवास करूँगी तथा नेत्र आदि पिण्डों में स्थित तेजोमय निकुञ्ज की भावना करती हुई उसी के फलरूप उपयोगी अपना कोमल (किङ्करी) वपु देखूँगी ?

यत्र यत्र मम जन्मकर्मभिर्नारकेऽथ परमे पदेऽथ वा ।
राधिकारतिनिकुञ्जमण्डली तत्र तत्र हृदि मे विराजताम् ॥२६७॥

धामनिष्ठा से सम्पूर्ण कर्म-निवृत्ति और परमपद-प्राप्ति –

जहाँ-जहाँ मेरा जन्म हो – 'कर्मवश' नरक में, स्वर्ग में अथवा परमपद पर जाकर भी श्री राधा-केलि की कुञ्ज-मण्डली (युगल, सहचरी और वृन्दावन) मेरे हृदय में सदा विराजित रहे ।

क्वाहं मूढमतिः क्व नाम परमानन्दैकसारं रसः
श्रीराधाचरणानुभावकथया निस्यन्दमाना गिरः ।
लग्नाः कोमलकुञ्जपुञ्जविलसद्वृन्दाटवीमण्डले
क्रीडच्छ्रीवृषभानुजापदनखज्योतिश्छटाः प्रायशः ॥२६८॥

दैन्यपूर्ण श्रीजी का ध्यान –

कहाँ तो मंदबुद्धि मैं और कहाँ परमानन्द का भी सार रसरूप उनका 'श्रीनाम', फिर भी श्रीराधारानी के चरण-प्रभाव-कथन वाला आन्दोलित हो रहा यह मेरा वाक्य-समूह जो कि कोमल कुञ्जसमूहों में श्रीवृन्दावन में संलग्न प्रायः क्रीड़ापरायण वृषभानुलाड़िली की पद-नख-ज्योति की छटा से युक्त है ।

श्रीराधे श्रुतिभिर्बुधैर्भगवताप्यामृग्य सद्वैभवे
स्वस्तोत्रस्वकृपात एव सहजो योग्योप्यहं कारितः ।
पद्येनैव सदापराधिनि महन्मार्गं विरुध्य त्वदे –
काशे स्नेहजलाकुलाक्षि किमपि प्रीतिं प्रसादीकुरु ॥२६९॥

अन्तिम प्रार्थना –

हे श्रीराधे ! आपका वैभव श्रुतियों, बुद्धजनों और स्वयं भगवान् के द्वारा भी ढूँढा जाता है; ऐसे वैभव का वर्णन आपकी कृपा से स्तोत्र पद्यरूप में करने के लिए मैं सरलता से योग्य बना दिया गया हूँ । अतः स्नेहजल से पूर्ण व दया से व्याकुल नेत्रों

वाली 'श्रीराधा' मुझ महत् अपराधी और महत् मार्गों के विरोधी किन्तु एकमात्र तुम्हारी ही आशा रखने वाला मुझे अवर्णनीय कृपा-प्रीति का प्रसाद प्रदान करें।

अद्भुतानन्दलोभश्चेन् नाम्ना रससुधानिधिः।
स्तवोऽयं कर्णकलशैर्गृहीत्वा पीयतां बुधाः ॥२७०॥

ग्रन्थ-फलश्रुति और आदेश –

हे विद्वज्जनो ! यदि आपको अद्भुत आनन्द का लोभ है तो इस 'रस-सुधा-निधि' स्तोत्र को ग्रहण करके अपने कर्ण-कलशों से पान करें।

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रयुक्त छन्दों का विवरण

अनुष्टुप् लक्षणम् –

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घं मन्ययोः ॥
इस वृत्त के प्रत्येक पाद में ८ अक्षर होते हैं । सर्वत्र ५वाँ वर्ण लघु एवं ६वां गुरु होता है । द्वितीय एवं चतुर्थ पाद में ७वां वर्ण ह्रस्व तथा प्रथम व तृतीय पाद में सप्तम वर्ण गुरु या दीर्घ होता है ।

(प्रस्तुत ग्रन्थ का श्लोक २७० 'अनुष्टुप् छन्द' में है ।)

आर्यावृत्तम् –

यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रा स्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ॥
अर्थात् – जिसके प्रथम एवं तृतीय पाद में १२-१२ मात्रा होती हैं तथा द्वितीय पाद में १८ मात्रा चतुर्थ पाद में १५ मात्रा होती हैं । उसे आर्या कहते हैं । यह मात्रिक छन्द है ।

(प्रस्तुत ग्रन्थ का श्लोक २०० आर्या छन्द में है ।)

गीति वृत्त लक्षणम् –

आर्य प्रथम दलोक्तं, यदि कथमपि लक्षणं भवेदुभयोः ।
दलयोः कृतयतिशोभां, तां गीतिं गीतवान् भुजङ्गेशः ॥
अर्थात् – जिस छन्द के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्ध में आर्या के पूर्वार्द्ध का लक्षण घटित होता है, उसे 'गीति वृत्त छन्द' कहते हैं । आर्या के प्रथम पाद में १२ मात्रा एवं द्वितीय पाद में १८ मात्रा होती हैं । यह मात्रिक छन्द है ।

उदाहरण – प्रकृत ग्रन्थ का १९८ वां श्लोक ।
ऽऽ। ।।। ऽऽ, ।।। ।।। ऽ।ऽ ।ऽ। ।ऽ

[प्रस्तुत ग्रन्थ के २ श्लोक (श्लोक संख्या – १९८, २३६) 'गीति छन्द' में हैं ।]

गाथा वृत्तम् –

विषमाक्षर पादं वा पादै रसमं दशधर्मवत् ।
यच्छन्दो नोक्तमत्र गाथेति तत् सूरिभिः प्रोक्तम् ॥
अर्थात् – विषम अक्षर एवं विषम पाद ४ पाद से भिन्न-पाद होते हैं उन्हें गाथा छन्द कहते हैं । उदाहरण – प्रकृत काव्य का १९९ वां श्लोक विषमाक्षर है ।

(प्रस्तुत ग्रन्थ का श्लोक १९९ 'गाथा छन्द' में है ।)

उपजाति –
। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ
ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
पादौ यदीयावुपजातयस्ताः

इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के चरण जब एक ही छन्द में प्रयुक्त हों तो उस छन्द को उपजाति कहते हैं।

[प्रस्तुत ग्रन्थ के २ श्लोक (श्लोक संख्या – १९६,१९७) 'उपजाति छन्द' में हैं ।]

इन्द्रवज्रा –
ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः

'इन्द्रवज्रा छन्द' एक सम वर्ण वृत्त छन्द है, इसके प्रत्येक चरण में ११-११ वर्ण होते हैं । 'इन्द्रवज्रा' के प्रत्येक चरण में दो तगण, एक जगण और दो गुरु के क्रम से वर्ण रखे जाते हैं ।

(प्रस्तुत ग्रन्थ का श्लोक २३८ 'इन्द्रवज्रा छन्द' में है ।)

पृथ्वी –
।ऽ।।।ऽ ।ऽ।।।ऽ। ऽऽ।ऽ
जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः

जिस छन्द में क्रमशः जगण सगण जगण लघु एवं अंत में गुरु होता है तथा ८ एवं ९ वर्णों पर विराम होता है, उसे 'पृथ्वी छन्द' कहते हैं।

[प्रस्तुत ग्रन्थ के २७ श्लोक (श्लोक संख्या – ५७,५८,८१,८३,९०,९२,१०९,१११,११२,११३,११९,१२२,१३२,१४०,१५७,१६१,१६६,१७०,१७१,१७६,१७७,१८४,१८५,१९४,२२१,२२४,२४७) 'पृथ्वी छन्द' में हैं।]

मन्दाक्रान्ता –
ऽऽऽऽ ।।।।।ऽऽ।ऽ ऽ।ऽऽ
मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्

'मन्दाक्रान्ता छन्द' के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण भगण नगण दो तगण एवं अंत में दो गुरु वर्ण होते हैं तथा ४, ६ एवं ७ वर्णों पर यति होता है।

[प्रस्तुत ग्रन्थ के ३२ श्लोक (श्लोक संख्या – ६२,६६,८४,८६,८८,९९,१०३,१०७,१३३,१३६,१४५,१६३,१६८,१८६,१८९,१९०,२०७,२०८,२१२,२१५,२१७,२१८,२२०,२२६,२२७,२४८,२५२,२५४,२५६,२६०,२६१,२६२) 'मन्दाक्रान्ता छन्द' में हैं।]

रथोद्धता –
ऽ।ऽ।।।ऽ।ऽ।ऽ
रान्नराविह रथोद्धता लगौ

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः रगण नगण रगण लघु एवं गुरु होता है, वह 'रथोद्धता' कहा जाता है।

(प्रस्तुत ग्रन्थ का श्लोक २६७ 'रथोद्धता छन्द' में है।)

वसन्ततिलक –
ऽऽ ।ऽ।।।ऽ ।।ऽ।ऽ ऽ
ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः 'तगण', 'भगण', 'जगण', 'जगण' और अंत में दो गुरु वर्ण होते हैं उसे 'वसन्ततिलक छन्द' कहते हैं ।

[प्रस्तुत ग्रन्थ के ४९ श्लोक (श्लोक संख्या १-४९) 'वसन्ततिलक' छन्द में हैं ।]

शिखरिणी –
।ऽ ऽऽऽ ऽ।।।।।ऽ ऽ।।।ऽ
रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी

'शिखरिणी छन्द' के प्रत्येक पाद में क्रमशः यगण मगण नगण सगण भगण लघु एवं अंत में एक गुरु वर्ण होता है तथा ६ एवं ११ वर्णों पर यति होता है ।

[प्रस्तुत ग्रन्थ के ४७ श्लोक (श्लोक संख्या –
५०,५१,५२,५३,५४,५५,६५,१०४,१०५,१०६,११५,१३७,१४४,१४६,१४८,१४९,१५०,
१५८,१५२,१५३,१५४,१६५,१७४,१८३,१८७,१९१,१९२,१९३,१९५,२०१,२०२,२०३,
२०९, २१०,२१४,२१९,२२८,२३१,२३२,२३४,२४९,२५०,२५१,२५३,२५५,२५७,२६३)
'शिखरिणी छन्द' में हैं ।]

शार्दूलविक्रीडित –
ऽऽऽ।। ऽ।ऽ।।।ऽ ऽऽ।ऽऽ।ऽ
सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्

'शार्दूलविक्रीडित छन्द' के प्रत्येक पाद में क्रमशः मगण सगण जगण सगण दो तगण एवं अंत में गुरु वर्ण होता है तथा १२ एवं ७ वर्णों पर यति का नियम है ।

[प्रस्तुत ग्रन्थ के ८७ श्लोक (श्लोक संख्या –
५६,५९,६०,६१,६३,६४,६७,६८,६९,७०,७१,७२,७३,७४,७५,७६,७७,७८,७९,८०,८२,८५,
८७,८९,९३,९४,९५,९६,९७,९८,१००,१०१,१०२,१०८,११०,११४,११६,११७,११८,१२०,
१२१,१२३,१२५,१२८,१२९,१३१,१३४,१३५,१३८,१३९,१४१,१४२,१५१,१५६,१६४,
१६७,१६९,१७८,१७९,१८०,१८१,१८२,१८८,२०४,२०५,२०६,२२२,२२३,२२५,२२९,
२३०,२३३,२३७,२३९,२४०,२४२,२४३,२४४,२४५,२४६,२५८,२५९,२६४,२६५,२६६,
२६८, २६९) 'शार्दूलविक्रीडित छन्द' में हैं ।]

स्रग्धरा –

ऽऽऽऽ ।ऽऽ ।।।।।।ऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽऽ

म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्

'स्रग्धरा छन्द' के प्रत्येक पाद में क्रमशः मगण रगण भगण नगण और तीन यगण होते हैं तथा ७-७ वर्णों पर यति का नियम है ।

[प्रस्तुत ग्रन्थ के १६ श्लोक (श्लोक संख्या –
९१,१२४,१२६,१२७,१३०,१४३,१४७,१६२,१७२,१७३,१७५,२११,२१३,२१६,
२३५,२४१) 'स्रग्धरा छन्द' में हैं ।]

मालिनी वृत्तम् –

।।।।।।ऽऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽऽ

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः

'मालिनी छन्द' के प्रत्येक चरण में क्रमशः दो नगण एक मगण एवं दो यगण होते हैं तथा ८ एवं ७ वर्णों पर विराम होता है ।

[प्रस्तुत ग्रन्थ के ३ श्लोक (श्लोक संख्या – १५५,१५९,१६०) 'मालिनी छन्द' में हैं ।]

राधे किशोरी दया करो

हे किशोरी राधारानी ! आप मेरे ऊपर दया करिये । इस जगत में मुझसे अधिक दीन-हीन कोई नहीं है अतः आप अपने सहज करुण स्वभाव से मेरे ऊपर भी तनिक दया दृष्टि कीजिये ।

राधे किशोरी दया करो ।
हम से दीन न कोई जग में, बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा, यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषय विष ज्वाल माल में, विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में, दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और (विषय) की, हरो विमुख गति को झगरो ।
कबहुँ तो करुणा करोगी श्यामा, यही आस ते द्वार पर्‌यो ॥

मेरे मन में यह सच्चा विश्वास है कि श्यामा जू सदा से दीनों पर दया करती आई हैं । मैं अनादिकाल से माया के विषम विष रूपी विषयों की ज्वालाओं से उत्पन्न अनेक प्रकार के तापों की आग में जलता आया हूँ । इस जगत में आपका अवतार दीनों के कल्याण के लिए हुआ है । हे दीनों का पालन करने वाली श्री राधे ! कृपा करके आप मेरे हृदय में निवास कीजिये । मैं आपका दास होकर भी संसार के विषयों और विषयी प्राणियों से सुख पाने की आशा किया करता हूँ । आप मेरी इस विमुखता के क्लेश का हरण कर लीजिए । हे श्यामा जू ! जीवन में कभी तो ऐसा अवसर आएगा जब आप मेरे ऊपर करुणा करेंगीं, इसी आशा के बल पर मैंने आपके द्वार पर डेरा जमा लिया है ।

विषय तो दूर विषय की चर्चा भी मत करो क्योंकि
वह करोड़ों नरकों से भी घृणित है।
अहो ! श्रुति-कथा भी व्यर्थ है क्योंकि मुझे तो मोक्ष
से भी भय लगता है। परम पुरुष भगवान् के भजन
में यदि शुकदेव आदि उन्मत्त हैं तो उनसे हमें क्या,
हमारा मन तो श्री राधारानी के चरण-रस में ही डूबा रहे
(यही अभिलाषा है)। (83)

प्रेषक

श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान
गह्वर वन, बरसाना